उत्तर बिहार के मात्स्यिकी जल संसाधन - वर्त्तमान अवस्था एवं भावी संभावनाएँ

714
814102

मणीरंजन सिन्हा
एवं
बंकिम चन्द्र झा

केन्द्रीय अंतर्स्थलीय प्रग्रहण मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
बैरकपुरः 743101 पश्चिम बंगाल

उत्तर बिहार के मात्स्यिकी जल संसाधन - वर्त्तमान अवस्था एवं भावी संभावनाएँ

714
8/4/02

मणीरंजन सिन्हा

एवं

बंकिम चन्द्र झा

बुलेटिन न. 70 *फरवरी 1997*

(स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित)

केन्द्रीय अंतर्स्थलीय प्रग्रहण मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्

बैरकपुर - 743101 : पश्चिम बंगाल

Uttar Bihar ke matsyaki jal sansadhan ki vartmaan avastha evam sambhavnaem

(Golden Jubilee Bulletin of CIFRI)

Maniranjan Sinha
&
Bankim Chandra Jha

ISSN 0970-616 X

©
1997

Material contained in this bulletin may not be reproduced, in any form, without the permission of the publisher.

Edited and composed at : **Hindi Cell**
CIFRI Barrackpore

Published by : **The Director, CIFRI Barrackpore**

Printed at : **Calcutta Laser Graphics Pvt. Ltd.**
71, Hari Ghosh Street
Calcutta-700 006

प्रस्तावना

उत्तरी बिहार (मिथिला क्षेत्र) जल संसाधन के दृष्टि से देश में अग्रणीय स्थान रखता है । इस क्षेत्र में नदियों के एक जाल के अलावा विभिन्न आकार तथा प्रकार के प्राकृतिक जलाशयों की एक विशाल श्रृंखला हैं जिन्हें स्थानीय भाषा में "मान" और "चौर" कहा जाता है । यह जल क्षेत्र सदियों से उत्तर बिहार के संस्कृतिक तथा आर्थिक पहलुओं से जुड़े हुए हैं ।

प्रकृति के यह वरदान हाल के वर्षों तक मात्स्यिकी के उत्तम श्रोत माने जाते थे तथा इस क्षेत्र में बसे मत्स्य जीवी समुदाय के लिए जीवन निर्वाह के मूल आधार थे । परन्तु इनकी उपेक्षा, बढ़ती हुई आबादी तथा ऊपरी क्षेत्र में हो रहे अन्य विकास कार्यों के कारण यह अब पारस्थितिकी एवं मात्स्यकी, दोनों ही दृष्टिकोण से निम्नोत्तर अवस्था को आमुख हैं । वर्तमान में इनका उचित वर्गीकरण और क्षेत्र आंकड़े भी विवाद का विषय हैं । निकट भविष्य में यदि इन जल क्षेत्रों के पारिस्थितिकी एवं मात्स्यकी के संरक्षण पर उचित ध्यान नहीं दिया गया तो इनका अस्तित्व भी समाप्त हो सकता है और इस महत्वपूर्ण संसाधन के नष्ट होने से इस क्षेत्र के जन जीवन पर बहुत ही बुरा असर पड़ेगा।

प्रस्तुत आलेख में उत्तरी बिहार के जल संसधानों का उचित वर्गीकरण कर उनके वर्तमान पारिस्थिकी तथा मात्स्यिकी का ब्यौरा दिया गया है । मात्स्यिकी की संभावना पर विवेचन करके इसके ओर ध्यान आकर्षण करने का प्रयास इस आशा से किया गया है कि वर्तमान अवस्था को ध्यान में रखकर अनुसंधान कर्ता, प्रबन्धक, अन्य संबंधित अधिकारी तथा मत्स्य जीवी समुदाय सामूहिक प्रयास से प्रकृति की इस विशेष धरोहर को बचा सकें तथा इस क्षेत्र की आर्थिक दशा का उत्थान हो सके ।

मणीरंजन सिन्हा
बंकिम चंद्र झा

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

1.	भूमिका	1
2.	उत्तर बिहार के आर्द्र क्षेत्रीय जलों की उपयोगिता ।	3
3	गंडक कोसी तल क्षेत्र में मत्स्य परिग्रहण तथा पालन श्रोत	6
3.1	गंडक कोसी तल क्षेत्र में नदियों का विस्तार ।	6
3.1.1	नदी जल संसाधन	6
3.1.2	उत्तर बिहार की कुछ नदियों में भौतिक एवं रसायनिक अवस्था	7
3.1.3	तल क्षेत्र की नदियों में जैविक अवस्था	10
3.1.4	जल क्षेत्र की नदियों में मत्स्य आखेट की अवस्था	12
4.	गंडक तल-क्षेत्र में प्राकृतिक झील ।	15
4.1	मान मात्स्यिकी संसाधन	16
4.2	तल क्षेत्र के मानों में जलीय गुणवत्ता तथा प्रारंभिक उत्पादकता ।	18
4.3	मानों के तलछट के मिट्टी की गुणवत्ता	20
4.4	मान में जैविक अवस्था	21

4.1.1 प्लवक (प्लेंकटॉन) की अवस्था एवं भूमिका । 22
4.1.2 अधिपादप (पेरीफाइटॉन) की अवस्था एवं भूमिका । 24
4.4.3 अपतृण की अवस्था एवं भूमिका । 25
4.4.4 मान के तलछट में जन्तुओं की अवस्था । 28
4.4.5 मान जल संसाधन में मात्स्यिकी की अवस्था । 28

5. गंडक तल क्षेत्र में चौर जल संसाधन । 30

5.1 चौरों की उत्पति, आकार एवं कुल क्षेत्रफल । 33

6. उत्तर बिहार में नहर संसाधन और अनमें मात्स्यकी की सम्भावनाँए । 42

6.1 गंडक नहर की भौतिक रसायनिक अवस्था 42
6.2 गंडक नहर में जैविक अवस्था 44
6.3 गंडक नहर में मत्स्याखेट की स्थिति 45

7. उत्तर विहार में मात्स्यकी हेतु तालाव तथा पोखर 46
8. कोसी गंडक तल क्षेत्र में मत्स्य जाल एवं अन्य उपकरण 48

8.1 जालों का संक्षिप्त विवरण 49

9. बाढ़ बहुल आर्द्रक्षेत्रिय झील परितंत्र में ऊर्जा का स्थानांतरण 60

संस्तुति 63
संदर्भ 64

उत्तर बिहार के मात्स्यिकी जल संसाधन की वर्तमान अवस्था एवं सम्भावनाएँ

1. भूमिका

उत्तर बिहार की भौगोलिक स्थिति (25^0 18'-27^0 37' उत्तर तथा 83^0 48'-88^0 17' पूर्व) ऐसी है कि वर्षा एवं नदियों के मामले में यह एक धनी भू-भाग है। यहां की जमीन मुख्यत: तीन दृश्य प्रस्तुत करती हैं - तराई क्षेत्र (उत्तरी भाग), विर्वतनिक गर्त (उत्तर पूर्वी भाग) एवम् लगभग समतल (बीच का भाग) । जल संसाधनों के पृष्ठभूमि में उत्तर पूर्वी गर्त वाला भू-भाग विशिष्ट स्थान रखता है क्योंकि जल ग्रहण के इस क्षेत्र में विभिन्न आकार तथा प्रकार के जलाशयों की एक विशाल श्रृंखला है। साथ ही बिछा हुआ है नदियों का एक जाल। चौधरी (1976) के अनुसार इस क्षेत्र में हिमालय और गंगा के बीच 15 छोटी बड़ी नदियाँ हैं जो कोसी से शुरू हो कर गंडक पर समाप्त होती हैं। कोसी और गंडक के अतिरिक्त अन्य प्रमुख नदियाँ हैं - बूढ़ी गंडक, महानन्दा, कमला, करेह, बागमती आदि । वर्षा ऋतु में ये नदियाँ जब अपने उफान पर होती हैं तो इस भू- भाग के एक विशाल क्षेत्र को जलमग्न कर देती हैं और बाढ़ के रूप में जान माल का विशेष नुकसान करती हैं, लेकिन साथ ही साथ अति उत्तम तथा उपजाऊ मिट्टी प्रदान कर जीने का संदेश भी देती हैं। सदियों से यहाँ का जन-मानस इन प्राकृतिक जल सम्पदाओं से जुड़ा हुआ है । फलस्वरूप इस क्षेत्र की सभ्यता, संस्कृति तथा आर्थिक क्रिया कलाप पर इनका गहरा तथा अटूट प्रभाव परिलक्षित होता है । उत्तर बिहार के बाढ़ वहुल आर्द्र क्षेत्र में स्थित प्राकृतिक जल संसाधनों के वास्तविक क्षेत्रफल के बारे में अभी भी विवाद रहित आंकड़े उपलब्ध नहीं है । विभिन्न व्यक्तियों अथवा संस्थानों ने अलग अलग आंकड़े प्रस्तुत किये हैं । हाल के वर्षों में राज्य के मत्स्य विभाग द्वारा संकलित आंकड़ों के अनुसार इस क्षेत्र में 88073 हे. (820 वर्ग कि. मी.) आर्द्र क्षेत्र है जिसके अंतर्गत चौर (विवर्तनिक गर्तीय झील, (36538 हे.), मान (ओक्सबोलेक अथवा नदी से उपजे झील 4735 हे.) एवं तालाब तथा पोखर (46800 हे.) हैं । आंकड़ों द्वारा यह भी पता चलता है कि इस जल संसाधन का करीब 21% भाग निजी एवं 79% सरकारी अधिकार क्षेत्र में आता है। आजादी से पूर्व जब तक इस क्षेत्र के प्रमुख नदियों पर तटबंध का निर्माण नहीं

हुआ था, कुछ नदियाँ अपने आपरदन प्रकृति के कारण अपने बहाव की दिशा अक्सर बदल दिया करती थीं । फलस्वरूप, इनसे कटे हुए भाग झील का स्वरूप ले लेती थी और इस प्रकार अनेक प्राकृतिक झील जिन्हें स्थानीय तौर पर मान कहा जाता है यहाँ विद्यमान हैं । वर्तमान में इस प्रकार के झीलों की संख्या लगभग 63 है और ये जल संसाधन, जैव-विविधता तथा मत्स्य आखेट के लिए अत्यन्त ही विख्यात हैं । नदियों से आये मछलियों के लिए ये झील चारागाह, प्रजनन स्थल एवं आवास का कार्य करती हैं ।

हाल के वर्षों तक मात्स्यिकी के लिए उत्तम श्रोत माने जाने वाले, प्रकृति के ये वरदान बढ़ती हुई आबादी एवं इनके उपरी क्षेत्र में हो रहे अन्य विकास कार्यों के कारण निम्नोत्तर अवस्था में हैं । साथ ही नदियों में तटबंध बन जाने से तथा नदी और झील को जोड़ने वाली नल वाहिकाओं के निष्कृय हो जाने के कारण उत्तम किस्म की मछलियों के आगमन में व्यवधान भी उत्पन्न हो गया है । आज नदी से अच्छी किस्म की मछलियाँ झीलों में, चरने अथवा प्रजनन के लिए नहीं आ पाती हैं इसका सीधा असर मत्स्य प्रग्रहण पर पड़ा है एवं मछली के रूप में सोना उगलती ये झील वर्तमान में छोटी तथा शिकारी मछलियों के लिए चारागाह बन कर रह गए हैं । उत्तर बिहार के प्राकृतिक जल संसाधनों में जलीय पौधों के घने जमाव ने मत्स्य उत्पादन प्रक्रिया को और भी विकृत कर दिया है । आम तौर पर ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्राकृतिक सम्पदा बिलकुल ही मृतप्राय: हैं और अगर इनके संरक्षण की ओर अविलम्ब ध्यान नहीं दिया गया तो निकट भविष्य में ही अनेक झीलों का अस्तित्व बिलकुल ही समाप्त हो जायगा । वैसे भूत में भी अनेक सुन्दर जलाशय समाप्त हो चुके हैं ।

स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र के जल संसाधन पारिस्थितिकी के एक कठिन दौर से गुजर रहे हैं और इनके मत्स्य उत्पादन क्षमता में निरंतर ह्रास हो रहा है । मत्स्य जीवी समुदाय की आमदनी में आशा के विपरीत कमी आ रही है और आज उनके पुस्तैनी धंधे से जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त कमाई नहीं हो पा रही है । समाज के कमजोर वर्गों में से एक यह समुदाय मजदूरी करने को विवश है कारण खेती के लिए इनके पास पर्याप्त जमीन भी नहीं है । इस तरह के वेरोजगारी से समाजिक विसंगतियाँ जन्म ले रही हैं जो न तो समाज और न देश के हित में हैं ।

उपरोक्त परिस्थितियों के संदर्भ में हम यहाँ कुछ विशेष मुद्दों की चर्चा करना चाहते हैं ताकि इस क्षेत्र में उपलब्ध विशिष्ठ तथा उपजाऊ जल संसाधनों के समुचित संरक्षण के साथ वैज्ञानिक प्रबन्धन को प्रोत्साहित कर मत्स्य परिग्रहण तथा पालन में बढ़ोतरी की जा सके और ग्रामीण आर्थिकी तथा रोजगार को ठोस धरातल मिल सके । इस कार्य में सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है जहाँ अनुसंधान कर्त्ता, प्रबन्धक, अन्य अधिकारी तथा मत्स्य पालक समुदाय एक जुट होकर कार्य करें । इस कार्य के सफलता के लिए आवश्यकता है जल के इन श्रोतों की सही पहचान की, ताकि इनका उचित वर्गीकरण कर एवं उचित वैज्ञानिक प्रवन्धन की मदद से समस्याओं का सही निदान किया जा सके । इस आलेख में हमने इस क्षेत्र के जल संसाधनों की वर्तमान अवस्था तथा मात्स्यिकी की सम्भावना पर विवेचना करने का प्रयास किया है ।

2. उत्तर बिहार के आर्द्र क्षेत्रीय जलों की उपयोगिता

उत्तर बिहार में उपलब्ध आर्द्र क्षेत्र (वैटलैन्ड) का विस्तार इतना विस्तृत है कि इस क्षेत्र के जन- मानस पर इसका प्रभाव पड़ना निश्चित है (मानचित्र संख्या-1)। सदियों से इन जल संसाधनों की उपयोगिता की पहचान लोगों को है, इसीलिए इस क्षेत्र के प्रत्येक कार्य-कलाप (कृषि/बागवानी/मात्स्यिकी) इन जलों पर आधारित हैं । इनका महत्व आर्थिक होने केसाथ साथ समाजिक भी है और सही अर्थों में अगर विवेचना की जाय तो इस क्षेत्र का समस्त पारिस्थितिकी इन जल श्रोतों पर ही आधारित है । वस्तुतः जल के ये विस्तार क्षेत्रिय पारिस्थतिकी को स्थायित्व प्रदान करते हैं । इस क्षेत्र में जंगलीय आच्छादन की अत्यंत कमी के फलस्वरूप क्षेत्रीय पारिस्थितिकी के संतुलन हेतु इन जल स्त्रोतों का महत्व और भी बढ़ जाता है। आर्द क्षेत्र एक ऐसी शब्दावली है जिसके अर्न्तगत कई प्रकार के जल संसाधन आते हैं। लेकिन, इसके अंतर्गत मुख्य तौर पर, मान और चौर वर्ग के जलों की व्याख्या की जाती है। आर्द क्षेत्र के जल तंत्र अत्यधिक उपजाऊ हैं एवं जैव-विविधता के दृष्टिकोण से भी इनका विशेष महत्व है। इस क्षेत्र में उपलब्ध समस्त जल संसाधनों के बीच एक गहरा संबंध है तथा ये एक दूसरे के पूरक हैं। इनका संरक्षण अति आवश्यक है क्योंकि मात्स्यिकी के ये स्त्रोत क्षेत्र के आर्थिक प्रगति के सशक्त माध्यम बन सकते हैं ।

विभिन्न समय में विभिन्न वर्ग के उपभोक्ताओं द्वारा इनके उपयोगिता का विभिन्न महत्व बताया गया हैं। कुछ लोगों का मत है कि अग्रता के आधार पर इनका उपयोग कृषि के प्रसार में अधिक होना चाहिए। वहीं दूसरा वर्ग मानता है कि इनकी उपयोगिता मात्स्यिकी के प्रसार में अधिक है। हाल के वर्षों में एक तीसरे वर्ग का भी उदय हुआ है जो मानता है कि इन जलसंसाधनों का कृषि तथा मात्स्यिकी के विकास की प्रक्रिया में अत्यधिक दोहन किया जा रहा है जिसका जैव-विविधता पर विपरीत असर पड़ रहा है । विवाद की इस पृष्ठभूमि में एक सहमति की नितांत आवश्यकता है ताकि विकास तथा पारिस्थितिकी के बीच एक ठोस सामंजस्य स्थापित हो सके । मात्र जैव विविधता के संरक्षण के नाम पर सदियों से हो रहे आर्थिक क्रिया कलापों को अकस्मात बंद नहीं किया जा सकता। किसी ठोस विकल्प के अभाव में मात्स्यिकी को बंद कर पाना बिल्कुल ही असंभव है। तीन दशकों से चल रहे इन विवादों के समुचित हल तलाश करने हेतु सरकार द्वारा आयोगों का गठन किया जाता रहा है जिनके प्रतिवेदन का सार निम्न उद्धृत है।

वर्ष 1971 एवं 1972 में क्रमशः बिहार राज्य सिंचाई आयोग एवं भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय सिंचाई आयोगों का गठन किया गया था ताकि इन जलों की उपयोगिता के संदर्भ में अग्रता का निर्धारण किया जा सके । इन आयोगों द्वारा प्रस्तावित प्रतिवेदन में जल संसाधनों की संक्षिप्त व्याख्या के अतिरिक्त कोई ठोस प्रस्ताव नहीं था। सिंचाई आयोगों का मत था कि वाढ़-बहुल इस तल क्षेत्र में चूँकि बाढ़ के पश्चात भी विवर्तनिक गर्तों में जल जमाव शेष रह जाता है, कृषि के लिए उत्तम इस भूमि का सदुपयोग नहीं हो पाता है, इसलिए चौरों से जल का सम्पूर्ण निष्कासन कर देना चाहिए। इन आयोगों के प्रतिवेदन में प्रस्तावित तथ्यों के सत्यापन हेतु भारत सरकार ने वर्ष 1976 में एक राष्ट्रीय कृषि आयोग का गठन किया था जिसने यह राय व्यक्त किया था कि कृषि में उपयोग के अतिरिक्त ये जल संसाधन मात्स्यिकी के लिए भी उत्तम और सशक्त श्रोत हैं । अतः इस दिशा में ठोस प्रयास होने चाहिए । इस आयोग ने तो यहां तक कहा था कि मान जल संसाधनों को मात्र मात्स्यकी के विकास लिए ही छोड़ देना चाहिए ताकि इस क्षेत्र में अंतर्स्थलीय मत्स्य प्रग्रहण तथा पालन को ठोस आर्थिक आधार मिल सके और गरीबी उन्मूलन की दिशा में सार्थक कदम उठाया जा सके । इस क्षेत्र के जनता द्वारा उठाए गए मांग कि चौर जल संसाधनों का जल निकाल कर कृषि भूमि में परिवर्तित कर दिया जाय ताकि कृषि कार्य के लिए अतिरिक्त भूमि उपलब्ध हो

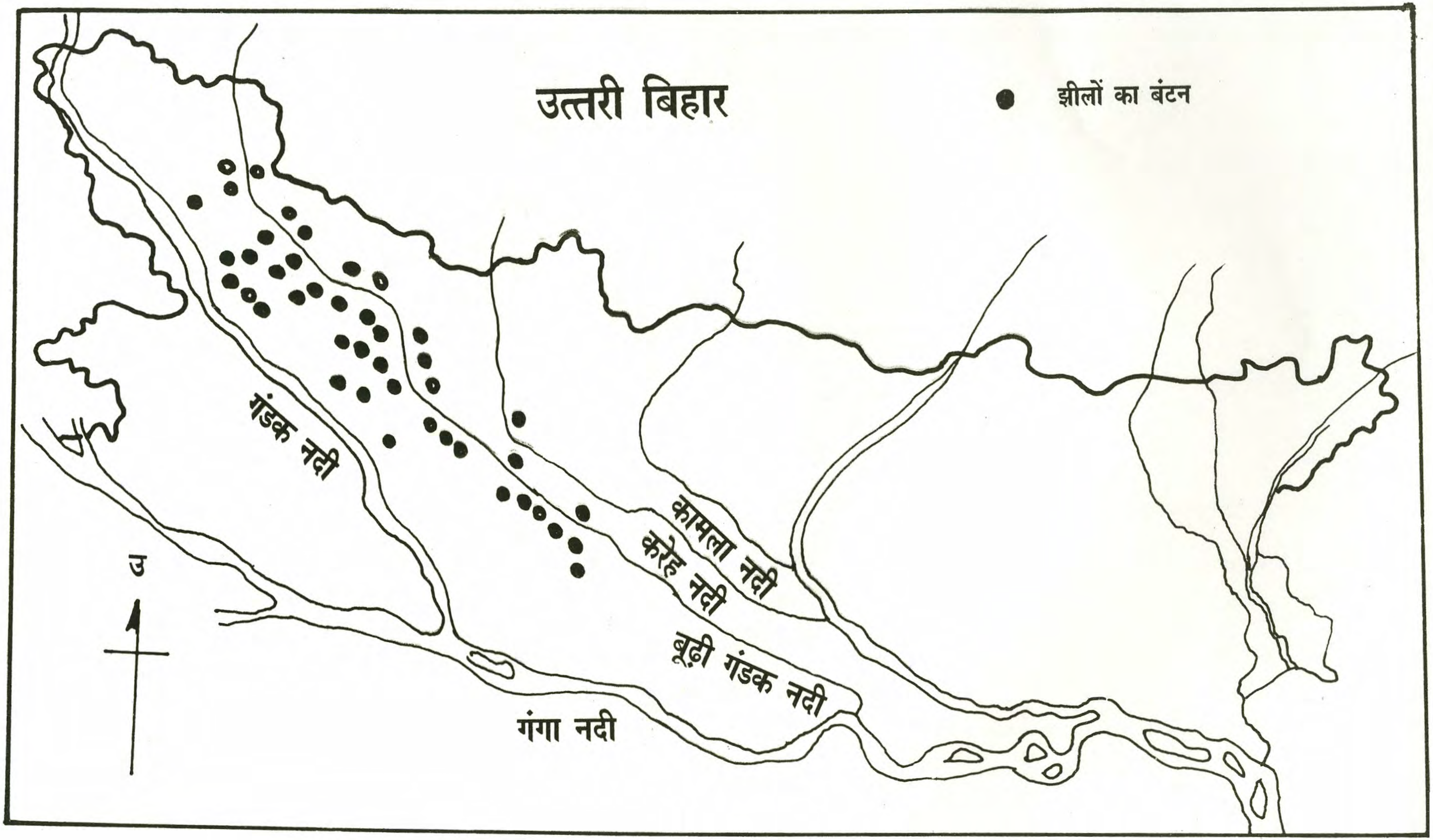

मानचित्र 1: उत्तर बिहार के आर्द्र क्षेत्र (वेटलैंड) का बंटन

सकें तथा ठहरे हुए जलों से ऊपजे विमारियों पर अंकुश भी लगाया जा सके । इसे मद्देनजर रखते हुए वर्ष 1980 में एक राष्ट्रीय बाढ़ नियंत्रण आयोग का गठन किया गया था । इस आयोग ने सिंचाई आयोग तथा जनता की मांगों के सम्पूर्ण विवेचना के पश्चात यह मत व्यक्त किया था कि चौर से जल की निकास सम्भव नहीं है । अतः इन जल संसाधनों के समुचित उपयोग के लिए मात्स्यिकी को प्रोत्साहित किया जाय ताकि इनमें आये विकृतियों में सुधार हो सके और पानी से ऊपजे बीमारियों पर भी कुछ हद तक काबू पाया जा सके ।

चौर जलाशयों से जल निकाल कर कृषि भूमि में परिवर्तन एक अवैज्ञानिक प्रयास माना जा सकता है, क्योंकि इसका इस भू-भाग की पारिस्थितिकी पर विनाशकारी प्रभाव होगा । साथ ही जैव- विविधता का भी विनाश हो जायगा । चौर, बाढ़ से ऊपजे जल के एक बड़े भाग को अपने अंदर समाहित कर लेता है और इस तरह बाढ़ के विस्तार को कुछ हद तक कम कर देता है । साथेर एवं साथी (1984) के अनुसार आर्द्र क्षेत्र का मूल्यांकन राष्ट्रीय नहीं अपितु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होना चाहिए क्योंकि जमीन के अंदर के जल स्तर को बनाए रखने में इनकी प्रमुख भूमिका होती है । रोबर्ट (1994) ने आर्द्र क्षेत्र की भूमिका के बारे में विस्तार से चर्चा किया है और उनके अनुसार आर्द्र क्षेत्र के जल संसाधन निम्न प्रकार्यो को अंजाम देते हैं।

क) भौमजल का पुनर्भरण तथा विसर्जन।
ख) बाढ़जल संचयन।
ग) अपरदन कारक शक्तियों को क्षयकर तटीय स्थायीकरण।
घ) अवसाद प्रग्रहण।
ङ) पोषक तत्वों का धारण तथा निष्काषन।
च) मछलियों तथा अन्य जलीय जीवों के लिए आवास।
छ) सक्रिय अथवा निष्क्रिय मनोरंजन।
ज) जलीय आहार. शृंखला की रक्षा, आदि।

आर्द्र क्षेत्र जल संसाधन उपरोक्त प्रमुख प्रकार्यों के अतिरिक्त किसी क्षेत्र विशेष के मौसम को भी प्रभावित करते हैं तथा आक्सीजन के उत्पादन में सहायता करते हैं। इन जलों द्वारा भारी धातु तथा विषैले पदार्थों का भी धारण किया जाता है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह निश्चित् तौर पर कहा जा सकता है कि उत्तर बिहार में उपलब्ध प्राकृतिक जल संसाधन मात्स्यिकी के विकास तथा प्रसार हेतु अति उत्तम श्रोत हैं जिसकी अपेक्षा नही की जा सकती। मात्स्यिकी तथा कृषि के इन अवलम्बों के संरक्षण के प्रयास में तेजी लाने की जरूरत है क्योंकि इस क्षेत्र की सम्पूर्ण आर्थिकी इन पर निर्भर करती है। हाँ, इस वात का ध्यान अवश्य ही रखना होगा कि मात्स्यिकी का विकास पर्यावरण के मानदण्डों के अनुकूल हो ताकि जलीय पर्यावरण सम्बन्धित विकृतियाँ जन्म न ले सकें। अतः मत्स्य विकास, पारिस्थितिकी तथा जैव-विविधता के वीच सही तालमेल स्थापित करने की आवश्यकता है।

3. गंडक - कोसी तल क्षेत्र में मत्स्य परिग्रहण तथा पालन श्रोत

उत्तर बिहार का आर्द्र क्षेत्र मत्स्य परिग्रहण एंव पालन के मामले में अत्यन्त ही धनी है। कोसी गंडक-तल क्षेत्र में छोटे वड़े प्राकृतिक तथा मानव निर्मित मात्स्यिकी श्रोतों का विहार प्रदेश के मछली उत्पादन में विशेष भूमिका है। विहार, अंतर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन में पूरे देश में दूसरा स्थान रखता है जवकि मत्स्य वीज उत्पादन में इसका स्थान छठवाँ है और इस समस्त प्रक्रिया में इस क्षेत्र का योगदान 60 प्रतिशत से भी अधिक है। इस तल क्षेत्र के मात्स्यिकी संसाधनों में नदी, मान, चौर, तालाव, पोखर एंव नहर आते हैं।

3.1 गंडक - कोसी तल क्षेत्र में नदियों का विस्तार

3.1.1 नदी जल संसाधन

कोसी-गंडक तल क्षेत्र में कुल 15 छोटी-वड़ी नदियाँ (कोसी, गंडक, वुढ़ी गंडक, करेह, कमला, वागमती आदि) हैं जिनका उद्‌गम पड़ोसी देश नेपाल से होता है। इन नदियों में

जल के स्तर एंव बहाव के आधार पर इन्हें दो वर्गो में बाँटा जा सकता है: परिवार्षिक तथा मौसमी । परिवार्षिक नदियाँ वह होती हैं जिनमें जल बहाव की प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है और जल स्तर की एक निम्नतम सीमा होती है। इसके विपरीत मौसमी नदियाँ वर्षा काल में अत्यंत ही क्रियाशील रहती है लेकिन बाद के महीनों में प्राय निष्क्रिय हो जाया करती हैं। परिभाषा के इस मानदंड के अनुसार कोसी, गंडक, बुढ़ी गंडक, बागमती आदि प्रथम श्रेणी में आती है एवं शेष अन्य नदियों को दूसरे वर्ग में रखा जा सकता है । नदियों का उद्‌गम स्थान चूँकि नेपाल के तराई क्षेत्र में है अतः इनके शुरू का भाग आपरदनकारी प्रवृति के हैं, क्योंकि इस भाग में जल प्रवाह काफी तेज होता है । लेकिन बाद में विवर्तनिक गर्त वाले भू-भाग में पहुँचते-पहुँचते ये शिथिल पड़ जाती हैं साथ ही इनका पाट भी चौड़ा हो जाता है। नदियाँ बाढ़ के साथ-साथ इस क्षेत्र में समृद्धि भी लाती हैं और सदियों से चली आ रही लोकोक्ति *"धान, मखाना, माछ और पान तब मिथिला जान"* को साकार करती हैं।

3.1.2 उत्तर बिहार की कुछ नदियों में भौतिक एवं रसायनिक अवस्था

जैसा कि उपर कहा जा चुका है कि इस क्षेत्र में 15 नदियाँ हैं लेकिन गंडक, बूढ़ी गंडक तथा कोसी को छोड़कर अन्य नदियों के पारिस्थतिकी के बारे में अध्ययन नहीं के बराबर हुए हैं। अतः आवश्यक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं । सारणी संख्या 1 में गंडक, बुढ़ी गंडक और कोसी नदियों के भौतिक एवं रसायनिक आंकड़े उद्‌धृत हैं।

सारणी संख्या 1 में दिए गए प्राचलों के विवेचना से यह पता चलता है कि इस तल क्षेत्र की नदियों में पोषक तत्वों, नाइट्रेट तथा फास्फेट, के जमाव की प्रक्रिया अधिकता की ओर अग्रसर हैं, जो जलीय प्रदूषण के प्रादुर्भाव को परिलक्षित करती है। पी. एच. (हाइड्रोजन ऑयन) का स्तर, कोसी नदी को छोड़कर, तुलनात्मक दृष्टिकोण से कम एवं अम्लियता के आस पास विचरता है जो उत्पादकता के प्रतिकूल है । गंडक तथा बूढ़ी गंडक नदियों में क्लोराइड, *गंदलापन* तथा चालकता विशेष रूप से उल्लेखनीर्य हैं और इनके स्तर तथा उपलब्धता का अधिक होना जलों के दूषित होने की ओर इंगित करता है । झिंगरन (1975) द्वारा गंडक नदी के लिए उद्‌धृत प्राचलों के स्तर तथा वर्तमान अध्ययन के स्तर के तुलनात्मक विवेचना से जो बात उभरती है, उससे पता चलता है कि क्लोराइड, चालकता तथा गंदलापन में वृद्धि हुई

है जो इन जलों के उत्पादकता तथा जैव-विविधता को निश्चित तौर पर प्रभावित कर सकते हैं। आवाह क्षेत्र में विकास के बढ़ते चरण तथा तराई क्षेत्रों में जंगल की अंधाधुंध कटाई ने स्थिति को और भी गंभीर वना दिया है। नदियों में रेत का स्तर निरंतर बढ़ने के कारण एक तरफ तो इनका तल छिछला हो रहा है जिससे इनके जल ग्रहण क्षमता में ह्यस हो गया है और दूसरी तरफ जल के गंदलेपन का स्तर बढ़ने से खाद्य श्रृंखला पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। वनस्पति मूल के प्लवक के उत्पादन पर विशेष तौर पर प्रभाव पड़ा है जिसका कुप्रभाव दूसरे स्तर के जीवों पर पड़ना स्वाभाविक है।

मूल अनुपात (सोडियम+पोटेशियम/कैलशियम+मैगनेशियम) एक ऐसा ठोस आधार है जिसके आधार पर किसी भी जल के उत्पादन स्तर का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। गंडक नदी का मूल अनुपात 0.011 तथा 0.018 पाया गया है। बूढ़ी गंडक नदी में यह अनुपात 0.018 से 0.031 के बीच पाया गया है। कोसी नदी में इसका स्तर 0.010 तथा 0.015 के बीच पाया गया है। मूल अनुपात के आकड़ों से यह स्पष्ट है कि बूढ़ी गंडक नदी में पोषक तत्वों का जमाव अन्य दोनो नदियों से अधिक है और यह प्रक्रिया अगर जारी रहती है तो इस नदी को प्रदूषित होने से नहीं वचाया जा सकता, विशेषकर गर्मी के महीनों में जव जल बहाव की गति में अत्यधिक कमी आ जाती है। वैसे, वर्त्तमान में इन नदियों की अवस्था मध्यम उत्पादकता वाली मानी जा सकती है। बूढ़ी गंडक नदी में बढ़ते पोषक तत्वों का प्रमुख दायित्व चीनी तथा अन्य छोटे बड़े कारखानों से छोड़े गए स्राव तथा शहरों के गंदे नालों से आये स्रावों को दिया जा सकता है।

सारणी संख्या 1 कोसी गंडक तल क्षेत्र के कुछ नदियों की भौतिक रसायनिक अवस्था

प्राचाल	नदियाँ		
	गंडक	बूढ़ी गंडक	कोसी
तापक्रम (°से.)	18.5-32.5	18.0-33.0	170-32.0
गंदलापन (से. मी.)	125-300	120-260	118-235
पी. एच.	6.8-7.2	6.8-7.4	7.2-7.8
चालकता (माइक्रोमोहास से. मी.)	550-875	600-910	310-425
विघटित ऑक्सीजन (मि. ग्रा./लीटर)	5.0-7.4	5.4-8.2	6.0-8.4
स्वतंत्र कार्वन डायक्साइड (मि. ग्रा./लीटर)	0-4.5	0-6.0	0.-3.8
कुल कठोरता (मि. ग्रा./लीटर)	100.0-120.0	118.0-144.0	90-112
वाईकार्बोनेट (मि. ग्रा./लीटर)	95.0-118.0	110.0-160.0	75.0-100.0
कैलशियम (मि. ग्रा./लीटर)	20.0-32.0	25.0-40.0	12.0-20.0
मैगनेशियम (मि. ग्रा./लीटर)	7.0-9.0	5.0-8.2	3.5-7.2
पोटाशियम (मि. ग्रा./लीटर)	0-1.5	0.5-5.0	0-1.0

सिलीकेट (मि. ग्रा./लीटर)	20.2-28.4	18.0-29.0	1.4-2.1
नाइट्रेट (मि. ग्रा./लीटर)	0.45-1.8	0.48-1.96	0.25-0.31
फास्फेट (मि. ग्रा./लीटर)	0.08-0.25	0.02-0.28	0.01-0.1
क्लोराइड (मि. ग्रा./लीटर)	12.5-22.0	11.85-28.12	5.0-11.3

3.1.3 तल क्षेत्र की नदियों में जैविक अवस्था

किसी भी जल के उत्पादन स्तर का अनुमान उसमें उपलब्ध जीवों की संख्या और प्रकार के आधार पर लगाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर प्लवक जो सूक्ष्म जीवी होते हैं उन के उत्पादन स्तर और उनके प्रकार को आधार मान कर जल विशेष की उत्पादन क्षमता को आंका जा सकता है। प्लवक (प्लैन्कटान) समुदाय के जीव अनेक प्रकार से क्रियाशील रहते हैं। ये सूक्ष्मजीवी वनस्पति तथा जन्तु मूल के जीवों का एक समुदाय है जो जल के खाद्य श्रृंखला में मछली तथा अन्य प्राणियों के आहार के रूप में विशेष भूमिका निभाते हैं। साथ ही, वनस्पति मूल के प्लवक प्रारम्भिक कार्बन का आधार तैयार करते हैं और विघटित ऑक्सीजन में भी बढ़ोत्तरी लाते हैं। प्लवक की संख्या और प्रकार में अत्यधिक कमी या वढ़ोतरी इस बात के द्योतक हैं कि जल विशेष में कुछ खास किस्म के तत्व क्रियाशील हैं। किसी जल में पोषक तत्वों का जमाव जव वढ़ने लगता है तो खास वर्ग के प्लवकों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है लेकिन कुल प्रकार में कमी आ जाती है। इसके विपरीत प्लवक की संख्या में अत्यधिक कमी यह इंगित करता है कि जल में उपलब्ध रसायनों तथा प्लवक के वीच के ताल मेल में कहीं व्यवधान उत्पन्न हो गया है।

सारणी संख्या 2 में इस तल क्षेत्र के तीन प्रमुख नदियों (गंडक, वूढ़ी गंडक तथा कोसी) में प्लवक उत्पादन के आंकड़े दिए गए हैं।

सारणी संख्या 2 नदियों में प्लवक की अवस्था

नदी	वनस्पति प्लवक (संख्या प्रति लीटर)	जन्तु प्लवक (संख्या प्रति लीटर)	कुल प्लवक संख्या (संख्या प्रति लीटर)
गंडक	225-389	23-105	248-494
बूढ़ी गंडक	325-456	65-142	390-598
कोसी	210-350	18-83	228-433

इन नदियों में पाये जाने वाले प्लवक समुदाय का गुणात्मक आधार पर विवेचना करने पर देखा जा सकता है कि वनस्पति प्लवक की संख्या जन्तु प्लवक से अधिक हैं और यह अवस्था आपरदनकारी नदियों के प्रकृति के अनुकूल ही है। ऐसा पाया गया है कि वनस्पति मूल के प्लवक की संरचना में पीत-हरित शैवाल (डायटम) का योगदान सबसे अधिक होता है। हरित शैवाल (ग्रीन आलगी) का स्थान दूसरा एवं नील-हरित शैवाल (ब्लू-ग्रीन आलगी) का स्थान तीसरा है । वैसे और भी वर्ग के प्लवक पाये जाते हैं पर उनकी संख्या सामान्यतः नगन्य होती है । इन नदियों में, विशेषकर बुढ़ी गंडक में, वनस्पति प्लवक की उपस्थिति तथा वितरण पर गौर करने पर यह देखा गया है कि नील हरित वर्ग के प्लवक की संख्या बढ़ोत्तरी पर है, विशेषकर ग्रीष्म काल में जब नदी में जल प्रवाह कम हो जाता हैं । वस्तुस्थिति ऐसी है कि धीरे-धीरे इन नदियों में पोषक तत्वों, विशेषकर वनस्पति मूल के तत्वों का जमाव, इनके तलछट में, बढ़ रहा है जो नील हरित प्लवक के वृहत उत्पादन के लिए आवश्यक है। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि जलीय प्रदूषण का प्रारम्भ हो चुका है। वैसे अभी भी ये नदियाँ प्लवक उत्पादकता के मापदण्ड के अनुसार औसत दर्जे की हैं। प्लवक समुदाय की कम पैदावार तुलनात्मक दृष्टिकोण से इस अवस्था की ओर इंगित करती है कि तल क्षेत्र की नदियों में प्रारम्भिक कार्बन का उत्पादन स्तर कम है साथ ही जन्तु प्लवकों तथा मछलियों को समुचित आहार उपलब्ध नहीं हो पाता है । जलीय उत्पादकता की सारी कड़ियाँ चूँकि श्रृंखलाबद्ध तरीके से कार्य करती है, अतः एक भी कड़ी के कमजोर पड़ने से सम्पूर्ण

उत्पादन तंत्र पर इसका असर पड़ता है। इन नदियों के जल के अत्यधिक गंदलापन को वनस्पति वर्ग के प्लवकों के निम्न उत्पादन के लिए जिम्मेदार माना जा सकता है। इन नदियों में पी. एच. का स्तर तथा उच्च कलोराइड की उपस्थिति भी कुछ हद तक इस अवस्था के लिए जिम्मेदार हैं।

जन्तु प्लवक समुदाय विभिन्न नदियों में विभिन्न संख्याओं में पाये गए हैं । गंडक नदी में क्रमश: *कॉपीपोड, क्लॉडेसेरोन* तथा *रॉटीफर* , बूढ़ी गंडक में *रॉटीफर, कॉपीपोड* तथा *क्लॉडेसेरोन* एवं कोसी में *क्लॉडेसेरोन* , *कॉपीपोड* तथा *रॉटीफर* । प्रोटोजोवा की उपस्थिति भी देखी गई है लेकिन इनका बाहुल्य स्तर काफी कम तथा वितरण भी अनियमित पाया गया है । वैसे, तुलनात्मक दृष्टिकोण से बूढ़ी गंडक नदी में इनका बाहुल्य देखा गया है विशेषकर ग्रीष्म काल में । जन्तु प्लवक के बाहुल्य स्तर तथा वितरण के आधार पर भी इस बात की पुष्टि होती है कि इन नदियों में से मात्र बूढ़ी गंडक नदी ही मध्यम स्तर के प्रदूषण की शिकार है । अधिक मात्रा में रॉटीफर तथा प्रोटोजॉवा की उपस्थिति इस अवस्था के द्योतक हैं ।

3.1.4 जल क्षेत्र की नदियों में मत्स्य आखेट की अवस्था

पौराणिक काल से ही मिथिला का यह क्षेत्र सभ्यता और संस्कृति के साथ साथ मत्स्य बाहुल्य का क्षेत्र भी रहा है । बंगाल के तरह ही मछली जिसे स्थानीय भाषा में माछ कहते हैं विशेष लोकप्रिय खाद्य पदार्थ रहा है । यह इस बात की द्योतक है कि भूत काल से ही इस क्षेत्र में मत्स्य उत्पादन एवं परिग्रहण प्रचुर मात्रा में होता रहा है । इस क्षेत्र में लगभग 88 प्रजातियों की मछलियाँ पायी जाती हैं लेकिन सदियों से ही लोगों का अधिक रुझान रोहू (*लेबियो रोहिता*), भाकुर (*कतला कतला*) एवं नैन (*सिरहिनस मृगला*) की ओर रहा है । वैसे इन मछलियों के उत्पादन का ज्यादा तर भाग देश के अन्य भागों में निर्गत हो जाता है। आर्थिक मापदण्ड के अनुसार अन्य प्रमुख मछलियाँ है महासीर (*टोर टोर* तथा *टोर पीटीटोरा*), बोआरी (*वेलागो आट्ट*), सिघारा (*मिस्टस सिंघाला* एवं *मि. एयोर*) चीतल (*नोटेपटरस चीताला*) आदि । छोटी एवं मध्यम आकार की मछलियाँ, जैसे कि मांगुर (*कलेरियस बाटराकस*), सिंघी (*हेट्रोप्न्यूनिटस फॉसिलीस*), रीता (*रीता रीता*), बाँस पत्ता (*एलिया क्वायला*), जलकपूर (अ*म्पक बाइमेक्यूलेटस*), चपरी (*गुडुसिया चपरा*), फासा (*सेटिपिना फासा*), बाटा (*लेबियो बाटा*),

कुरसा (*लेबिया गोनियस*), रेवा (*सिरहीनस रेबा*) । पुठिया (पुन्टियस प्रजातिया), टेंगरा (*मिस्टस कवेसियस*), (*मि. विटेटस*), सिलन (*सिलोनिया सिलोन्डिया*), सोर (*चन्ना मरूलियस*), गरई (*चन्ना* प्रजातियाँ), चेला (*चेला प्रजातियाँ*), हरदा (*ऐसपिडोपोरिया मोरार*) आदि भी पकड़ी एवं वेची जाती हैं।

सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि हाल के कुछ वर्षों से मछलियों की वाहुल्यता में तथा पकड़ी जाने वाली मछलियों के प्रकार में निश्चित तौर पर ह्रास हुआ है । मत्स्य जीवी समुदाय के लोगों के अथक प्रयास के वाद भी अब उचित मात्रा में तथा अच्छी किस्म की मछलियाँ नहीं मिलती हैं। फलस्वरूप, इस क्षेत्र से होने वाले मत्स्य निर्गत में कमी हुई है। इस अवस्था का द्योतक है आन्ध्रप्रदेश से प्रचुर मात्रा में मछलियों का आयात। आखिर क्या कारण है इस निर्वहन का ? क्या मछलियों का उचित प्रजनन नहीं हो पा रहा है या फिर नदियों के जल प्रदूषित हो गये है ? इन तमाम परिस्थतियों के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मत्स्य वाहुल्यता में इस निर्वहन के लिए कई शक्तियाँ जिम्मेदार हैं। जैसे कि :-

क) नदियों के आवाह क्षेत्र में वढ़ती आवादी एवं विकास द्वारा मिटटी की अवद्धता।
ख) अवाह क्षेत्र के जंगलों की अंधा धुंध कटाई के कारण रेत तथा मिटटी के आगमन से जल का गंदलापन ।
ग) कल करखानों तथा शहरों से उपजे मलवों तथा कचरों का अत्यधिक प्रवाह।
घ) नदियों पर बांध के निर्माण से जल के आयतन तथा प्रवाह में कमी के कारण प्रजनन में खलल।
ड.) आवादी के वढ़ने के साथ मत्स्य आखेट के स्तर में वृद्धि ।
च) प्रजनक मछलियों का बड़े पैमाने पर शिकार एवं किशोर वर्ग के मछलियों की हत्या।
छ) नदियों के जल में प्रतिवर्ष ढेरों रेत तथा मिटटी के आने से इनके तल का छिललेपन एवं फलस्वरूप जल ग्रहण क्षमता में कमी, आदि ।

ये कुछ विशेष कारण हैं जो इन नदियों के मात्स्यकी पर विपरीत प्रभाव डाल रहे हैं। गंडक नदी में भैसालोटन में वांध वनने से पूर्व इस नदी में महासीर मछली का प्रग्रहण प्रचुर मात्रा में होता था लेकिन आज इसका प्रग्रहण नाम मात्र को ही है। इसी प्रकार बगारी

(बगेरियस बगेरियस) मछली का प्रग्रहण भी काफी घट गया है। बड़े आकार के रोहू, कतला, मृगल तथा कालवांस (लेवियो कालबासु) का प्रग्रहण कभी-कभी ही हो पाता है।आंकड़ों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि आनेवाले वर्षों में, अगर वस्तुस्थिति में सुधार नहीं हुआ, तो सारी संवेदनशील मछलियों के लोप हो जाने का खतरा है और तब बचेंगी मात्र वैसी मछलियाँ जो कम संवेदनशील हैं और जिनका आर्थिक मूल्य नगण्य है ।

इन नदियों से पकड़ी जानेवाली मछलियों के लिए इनके तट पर कोई समायोजन केन्द्र नहीं है। शिकारी अपने शिकार को सीधे गाँव या शहर के बाजार में ले जात हैं । मछुओं द्वारा पकड़े गए मछलियों के मिश्रण का अवलोकन करने पर पता चलता है कि अधिकांश मछलियाँ या तो शिकारी वर्ग की होती हैं या फिर छोटी प्रजातियों की। शिकारी मछलियों में सबसे अधिक टेंगरा, बोआरी आदि प्रजातियाँ होती हैं। छोटी मछलियों में अधिकांश भाग चेलवा, पुठिया, बचवा, सेहरी आदि का होता है। भारतीय कार्प मछलियों का शिकार बहुत ही कम है। मत्स्यजीवी समुदाय के बीच सर्वेक्षण से पता चलता है कि प्रत्येक शिकारी को प्रतिदिन औसतन 0.04 किलोग्राम से 1.0 किलोग्राम मछली ही मिल पाती है। आमतौर पर पकड़ी जाने वाली मछलियों की संरचना निम्न उद्धृत है :-

शिकारी मछली	45-50	प्रतिशत
छोटी मछली	35-40	प्रतिशत
मध्यम कार्प	10-12	प्रतिशत
बड़ी कार्प	5-8	प्रतिशत

इन नदियों से मीठे जल के झिंगे की प्रजाति *मेक्रोब्रेकियम ब्रिमेनिकस चौपराई* तथा अन्य छोटे प्रजातियों के झिंगे का भी यदा-कदा, विशेषकर गर्मी में ही शिकार होता है। मत्स्याखेट करने वाले शिकारी सामान्यत छोटी फंदों के जाल प्रयुक्त करते पाये जाते हैं। फाँसो तथा नदी के किनारे किनारे कांटा-डोरी का भी प्रयोग होता है। मत्स्य प्रग्रहण के इन प्रक्रियाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि इन नदियों में बड़ी मछलियों की संख्या पर्याप्त नही है।

4 कोसी- गंडक तल क्षेत्र में सर्पाकार प्राकृतिक झील (ऑक्सबोलेक)

इस तल क्षेत्र में प्राकृतिक झीलों की बहुतायत है जिन्हें स्थानीय तौर पर 'मान' कहा जाता है। ये सर्पाकार प्राकृतिक झील नदियों के बहाव की दिशा बदलने के कारण उत्पन्न हुए हैं और इनका इतिहास बहुत पुराना है। इस तरह के झील का उदय उस क्षेत्र में होता है जहाँ की धरती समतल विवर्तनिक गर्त वाली तथा बाढ़ बहुल हो।उत्तर बिहार का यह भू-भाग छोटी बड़ी नदियों से भरा पड़ा है एवं इन पर तटबंध बनने से पूर्व ये अक्सर अपने बहाव की दिशा बदल दिया करती थी और इस प्रक्रिया में सर्पाकार झील (ऑक्सबोलेक) का प्रार्दुभाव होता रहा है । बूढ़ी गंडक एवं इसकी सहायक नदियाँ विशेष रूप से इसके लिए जिम्मेदार हैं । कोसी-गंडक आर्द्र क्षेत्र में उपस्थित मान सर्पाकार अथवा अंग्रेजी के यू आकार के हैं । जल के विस्तार तथा झीलों के भौतिक बनावट के आधार पर इन्हें तीन प्रमुख वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

क) ऐसे 'मान' जिनका संबंध नदी के साथ अभी भी बरकरार है और इनके तथा नदी के बीच की जल वाहिका द्वारा जल का आदान प्रदान होता है। उन्हें 'जीवित मान' अथवा 'खुला मान' कहते हैं ।

ख) ऐसे 'मान' जिनका नदी के साथ का संबंध विल्कुल ही समाप्त हो गया है और जिनमें नदीय जल का प्रवेश अब नहीं होता उनको 'मृतमान' अथवा 'बंदमान' कहते हैं।

ग) ऐसे 'मान' जिनका निर्माण नदी पर तटवंध बन जाने के कारण अपूर्ण रह गया है और वर्षा काल में जिनका अस्तित्व नदी में विलिन हो जाता है, लेकिन वर्षा काल के बाद पुनः बाहर आ जाते हैं उनको अपूर्ण मान की संज्ञा दी जा सकती है । इस प्रकार के मान मत्स्य परिग्रहण के उत्तम श्रोत होते हैं ।

4.1 मान मात्स्यिकी संसाधन

उत्तर बिहार के कोसी-गंडक आर्द्र क्षेत्र में उपस्थित 'मान' मात्स्यकी के विशिष्ट श्रोत हैं । इस क्षेत्र में उपस्थित 'मान' जलीय संसाधन का कुल क्षेत्रफल आज भी विवाद के घेरे में है और यह इसलिए है कि इस क्षेत्र के प्राकृतिक झीलों (मान, चौर तथा चैंप) की सही पहचान नहीं हो पायी है । अभी भी 'मान' तथा 'चौर' के बीच आंकड़ों का हेर फेर है क्योंकि इनके उद्‌गम की सही व्याख्या उपलब्ध नहीं है ।

80 के दशक में राज्य मत्स्य विभाग द्वारा संचयित आंकड़ों के अनुसार इस क्षेत्र में पाए जानेवाले 'मान' का जलीय विस्तार 2785 हेक्टर है।राष्ट्रीय बाढ़ आयोग 1980 के अनुसार मान का क्षेत्रफल 3845 हेक्टर है ।बिहार राज्य मत्स्य विभाग के हाल के आकड़ों के अनुसार मान का कुल क्षेत्रफल 4512 हेक्टर है।इस क्षेत्र में किए गए सी. आई. एफ. आर. आई. सर्वेक्षण के अनुसार 'मान' का कुल क्षेत्रफल 4735 हेक्टर है।इसके अतिरिक्त लगभग 2000 हेक्टर ऐसे 'मान' है जो अपूर्ण हैं तथा नदी तथा तटबंधों के बीच फंसकर रह गए हैं। 'मान' मात्स्यकी संसाधनों पर विस्तृत आंकड़ें निम्न उद्धृत सारणी संख्या 3 में दिए गए हैं।

सारणी संख्या 3 उत्तर बिहार में मान संसाधन

जनपद	मान (हेक्टर)
पूर्वी चंपारण	2076
पश्चिमी चंपारण	1651
गोपाल गंज	-
सिवान	-
सारण	-

वैशाली	-
मुजफ्फरपुर	788
सीतामढ़ी	-
मधुवनी	-
दरभंगा	-
समस्तीपुर	220
बेगुसराय	-
सहरसा	-
पूर्णियाँ	-
कटीहार	-
खगरिया	-
मधेपूरा	-
कुल	4735 हेक्टर

जैविक उत्पादन तथा जैव विविधता के दृष्टिकोण से ये 'मान' अत्यंत ही महत्वपूर्ण होने पर भी उपेक्षित हैं। इनके उत्पादन क्षमता तथा उपयोगिता का ज्ञान तो लोगों को है लेकिन प्रादुर्भाव से लेकर आज तक इन पर ध्यान नहीं दिया गया अपितु विभिन्न तरीकों से इनका दोहन अवश्य किया गया है। पारिस्थितिकी के मानदंड के आधार पर ये जल संसाधन तेजी के साथ दलदलीकरण की ओर बढ़ रहे हैं, जिसका कारण है अवांछित जलीय पौधों का अतिक्रमण। जलीय पौधों के अत्यधिक जमघट ने मत्स्य उत्पादन प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न कर रखा है क्योंकि इसमें उपस्थित पोषक तत्व तलछट से सीधे जलीय पौधों में चले जाते हैं जिसके फलस्वरूप स्वाभाविक मत्स्य आहार श्रृंखला को जरूरी पोषण उपलब्ध नहीं हो पाता। पौधों का यह जंगल निरंतर बढ़ोतरी की ओर है । अतः दल-दल में परिवर्तन प्रक्रिया में तेजी आ रही है जिसने इन जलाशयों के अस्तित्व को ही खतरे में डाल रखा है। इस तल क्षेत्र में 'मान' की संख्या लगभग 63 है और सभी में जलीय पौधों का अत्यधिक जमाव है ।

वर्तमान में मात्स्यिकी के इन श्रोतों में मछली का उत्पादन औसतन 60 से 250 किलोग्राम प्रति हेक्टर प्रति वर्ष है जो इनके उत्पादन क्षमता (1000 किलो से 1500 किलो प्रति हेक्टर प्रति वर्ष) से बहुत ही कम है।मत्स्य उत्पादन के इस निम्न स्तर के लिये अनेक प्राकृतिक तथा मानवजनित क्रियाओं का योगदान है।

4.2 तल क्षेत्र के मानों में जलीय गुणवत्ता तथा प्रारंभिक उत्पादकता

कोसी-गंडक तल क्षेत्र के कुछ ही 'मानों' में वैज्ञानिक शोध हो पाया है जिसके आंकड़े सारणी संख्या 4 में उपलब्ध हैं। भौतिक-रासायनिक प्राचालों के अध्ययन से एक तथ्य जो विशेष रूप से उभर कर सामने आता है वह है इन जल संसाधनों में बढ़ते पोषक तत्व जिसका सीधा संबंध मानव जनित अतिक्रमण से है। ऐसे 'मान' जो शहरी आबादी से हट कर हैं, जैसे कि मनीका, में पारिस्थितिकी में बदलाव की प्रक्रिया मध्यम स्तर की है जबकि इसकी तुलना में शहर के आसपास वाले 'मान' जिनमें शहर या कल कारखानों के मलवों का प्रवेश होता है, में बदलाव की प्रक्रिया तेज है, जैसे कि ब्रह्मपुरामन, कॉटी मन, मोतीझील आदि। सारणी संख्या 4 में उद्घृत आंकड़ों को अगर देखें तो पता चलता है कि शहरी कचरे अथवा कल कारखानों के मलवे से इन जलाशयों में क्षारीयता के स्तर में विशेष रूप से बढ़ोतरी हो रही है (ब्रह्मपुरामन 155-610 मिलीग्राम प्रति लीटर, कॉटी 110-250 मिलीग्राम प्रति लीटर, मोतीझील 220-510 मिलीग्राम प्रति लीटर आदि)। इन जलाशयों में या तो शहरी कचरा (ब्रह्मपुरा) अथवा कल कारखानों का मलवा (कॉटी, मोतीझील) का प्रवेश होता है।जलीय उत्पादकता में क्षारीयता का एक सीमित स्तर 100-150 मी. ग्रा. प्रति लीटर का होना अच्छे उत्पादन के लिए जरूरी है लेकिन इस प्राचाल का स्तर बहुत अधिक होना उत्पादकता को कुंठित कर देता है । इसी प्रकार विघटित आक्सीजन के निम्नतम तथा अधिकतम स्तर में बहुत बड़ा फर्क पाया गया है, जैसे कि ब्रह्मपुरामान में 1.6 से 14.0 मी. ग्रा. प्रति लीटर, कॉटीमान में 0.05-10.0 मी. ग्रा. प्रति ली । अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये जल स्वाभाविक अवस्था में नहीं हैं । जलीय पौधों के अधिकता के कारण विघटित ऑक्सीजन में इतना फर्क आता है । इस अवस्था से इन जलों में पाये जाने वाले अनेक जीव-जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इनका विकास या तो कुंठित हो जाता है अथवा संवेदनशील प्रजाति के जीव जन्तु पूरी

तरह लुप्त हो जाते हैं । मछली के लिए भी यह अवस्था अनुकूल नहीं होती और इनका विकास अवरूद्ध हो जाता है । ऑक्सीजन के स्तर में एक सीमा से अधिक की कमी से मछलियों की सामूहिक मृत्यु हो सकती है जैसा कि कॉटीमान मुजफ्फरपुर में देखा गया है ।

सारणी संख्या 4: 'मानों' में भौतिक रसायन अवस्था

प्राचाल	मान			
	ब्रह्मपुरा	मनीका	काँटी	मोतीझील
ज. तापमान	16.5-31	15.0-53.0	17.0-30.0	17.0-31.0
गदलापन (से. मी.)	45-160	60-100	30-80	60-135
पी. एच.	6.5-8.2	7.3-9.4	6.8-9.0	7.0-8.4
वि. ऑक्सीजन (मी. ग्रा./ ली.)	1.6-14.0	6.0-12.0	0.05-10.0	3.5-13.0
क्षारियता (मी. ग्रा./ ली.)	155-610	80-130	110-250	220-510
फास्फेट (मी. ग्रा./ ली.)	0-0.008	0-0.01	0.01-0.03	0.02-0.5
नाइट्रेट (मी. ग्रा./ ली.)	0.1-0.5	0.09-0.43	0.12-0.401	0.18-0.89
चालकता (माइक्रोमोहास से. मी.)	350-610	370-584	250-950	300-840
प्रा उत्पादकता (मी. ग्रा.कार्वन/मी^{3}/घंटा)	31.25-125	16-125	0-35	-

किसी भी जल की चालकता एक ऐसा प्राचाल हो जो उस जल अवस्थित पोषक तत्वों के स्तर को परोक्ष रूप से दर्शाता है । इस तल क्षेत्र के कुछ मानों में चालकता का स्तर अपेक्षाकृत काफी अधिक पाया गया है (ब्रह्मपुरामान 480 माइक्रोमोहंस/से. मी., मनीका मान 477 मा. मो./से.मी., कॉटीमान 600 मा. मो./से.मी. एवं मोतीझील 570 मा. मो./से.मी.)। इस प्राचाल के विवेचना से ऐसा प्रतीत होता है कि ये मान प्रदूषण के शिकार हैं या होने की प्रक्रिया में हैं ।

इन जलाशयों में प्रारम्भिक कार्बन की पैदावार शून्य से 125 मी. ग्रा. कार्बन प्रति घन मीटर प्रति घंटा पाया गया है जो औसत स्तर का है ।

4.3 'मानों' के तलछट के मिट्टी की गुणवत्ता

मिट्टी पी. एच. की दृष्टिकोण से उपजाऊ हैं कारण यह सदैव ही क्षारीय अवस्था को दर्शाता है (ब्रह्मपुरा (7.7-8.2), मनीका (7.9-8.2), कॉटी (7.9-8.1), मोतीझील (7.8-8.2) आदि) । कुल कार्बन की मात्रा (0.32-2.8%) विशेष तौर पर उल्लेखनीय है कारण यह अत्यधिक उपजाऊ अवस्था को दर्शाता है । कुल नाइट्रेट (0.0-0.14%) एवं कुल फॉस्फेट (0.4-1.2%) क्रमश: मध्यम उत्पादकता तथा अधिक उत्पादकता की अवस्था का संकेत देते है (सारणी संख्या 5) ।

सारणी संख्या 5: मान के तलछट की मिट्टी की गुणवत्ता

प्राचाल	मान				
	मनीका	ब्रह्मपुरा	कॉटी	मोतीझील	मुक्तापुर
पी. एच.	7.9-8.2	7.7-8.0	7.9-8.1	7.8-8.2	7.6-8.5
कुल नाइट्रोजन (%)	0.07-0.15	0.08-0.14	0.08-0.12	0.09-0.2	0.67-0.11
कुल फॉस्फेट (%)	0.5-1.0	0.4-0.7	1.1-1.2	0.5-0.9	0.4-1.0
वनस्पति वर्गीय कार्बन (%)	0.32-2.2	0.4-2.6	2.5-2.8	0.5-2.8	0.41-1.9

4.4 मान में जैविक अवस्था

उत्तर बिहार के मान जैविक उत्पादन के पृष्ठभूमि में उत्तम श्रोत माने जाते हैं। हाल के वर्षों में वैसे इनके उत्पादन प्रक्रिया की दिशा में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। इस क्षेत्र के मान उपजाऊ हैं जो अत्यधिक अपतृणों के जमाव से परिलक्षित होता है। लेकिन इस जैविक उत्पादन से मानव कल्याण सम्भव नहीं है। अतः इनके उत्पादन प्रक्रिया के वर्तमान अवस्था का पुनः मूल्यांकन कर एवं पारिस्थितकी को अच्छी तरह समझ कर ठोस नीति अपनाने की आवश्यकता है ।

4.4.1 मानों में प्लवक का स्तर

झील (मान) पारिस्थितिकी में प्लवक की उपयोगिता सर्वविदित है । इन जलाशयों के अध्ययन से पता चलता है कि जलीय आहार श्रृंखला के इस उत्तम कड़ी का उत्पादन निम्न स्तर का है । जलीय उपतृणों के क्षत्रछाया में इन सूक्ष्मजीवी जीवों का समुचित विकास नहीं हो पा रहा है और इनकी उत्पादन प्रक्रिया भी कुंठित हो कर रह गई है । जलाशय की उत्पादकता उत्तम वर्ग के प्लवक एवं इसके एक निम्नतम संख्या पर आधारित होता है । अगर प्रारम्भिक उत्पादन प्रक्रिया ही वाधित हो जाय तो ऊपर के स्तर पर उत्पादन कैसे सम्भव हो पायगा । उत्तर विहार के मान में प्लवक के प्रकार एवं संख्या में निरंतर ह्रास हो रहा है । इसका प्रत्येक स्तर के जलीय जीवों पर विपरीत प्रभाव निश्चित है ।

आज हमारे जल संसाधन पोषक तत्वों के अत्यधिक जमाव से त्रस्त हैं और इनके स्वाभाविक गुण में विकृति आ गयी है। इस प्रक्रिया से इन जल संसाधनों पर गुणात्मक असर पड़ रहा है । इस क्षेत्र के अधिकांश प्राकृतिक जल भी इस प्रक्रिया से अछूते नहीं है। अतः ये मान या तो शैवाल कुंड वन कर रह गए है या फिर जलीय पौधों के जंगल । मानों में प्लवक समुदाय की संख्या 200 से 3000 संख्या प्रति ली. देखने को मिली है (सारणी संख्या 6)। कभी-कभी शैवालपुष्पपुंज (ऑल्गल व्लूम) का उदय होते भी पाया गया है जैसे व्रह्मपुरा मान, मुजफ्फरपुर, जिसमें शहर का कचरा गिरता है।

सारणी संख्या 6: मान में प्लवक की संख्या

मान	कुल संख्या/ली.	वनस्पति वर्गीय प्लवक	जन्तु वर्गीय प्लवक
		मुख्य प्लवकों का %	
व्रह्मपुरा (मुजफ्फरपुर)	1000-3000 (178,000) माइक्रोसिसटीस का पूष्पपुंज वर्ष 1988	75.0-86.6	13.5-25.0
मनीका, (मुज.)	450-940	46.3-76.1	23.9-53.7
कॉटी, (मुज.)	345-650	70.0-82.5	17.5-30.0
मुक्तापुर (समस्तीपुर)	345-650	70.0-82.5	17.5-30.0
मोतीझील (मोतीहारी)	200-450	80-92.5	7.5-20.0

सारणी संख्या 6 में प्रस्तुत आंकड़ो से यह स्पष्ट है कि इन जलाशयों में प्लवक उत्पादन की स्वाभाविक प्रक्रिया निश्चित तौर पर बाधित हुई है । तल क्षेत्र के झील में सामान्यत वनस्पति वर्गीय प्लवक की बहुलता पायी गई है । वैसे, कभी-कभी (मनीका मान) जन्तु

वर्गीय प्लवक समुदाय की संख्या भी अपेक्षाकृत अधिक देखी गई है । गंडक तल क्षेत्र के मान में प्लवक उत्पादन की दो अवस्थाएँ है ।

(क) शहर के आस पास के मान, जिनमें घरेलु कचरे का प्रवेश होता है, में प्लवक समुदाय की संख्या अधिक होने के साथ ही नील हरित शैवाल की अधिकता पायी जाती है और कभी कभी शैवालपुष्पपूंज भी मुखरित होता है लेकिन यह अवस्था सामान्यत वर्षा काल के पश्चात तथा अपतृण के विस्तार में कमी आने पर पाया जाता है । उदाहरण ब्रह्मपुरामान, मुजफ्फरपुर ।

(ख) ऐसे मान जिनमें कल कारखानों के कचरे का प्रवेश होता, जैसे कि कॉटी (ताप विद्युत संस्थान के कचरे), मुक्तापुर (जुट मिल का कचरा) तथा मोतीझील (चीनी मिल का कचरा), में सामान्यत: प्लवक समुदाय की संख्या में अत्यधिक ह्रास पाया गया है।

4.4.2 मान में अधिपादप (पेरिफॉयटन) की अवस्था

जलीय पारिस्थतिकी में अधिपादप वर्ग के जीव-जन्तु अत्यंत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । अधिपादप वे सूक्ष्मजीव समुदाय हैं जिनका विकास किसी ठोस आधार जैसे कि पत्थर, रोड़ा, जलीय पौधे आदि पर होता है। अधिपादप परिवार के जीव जन्तुओं की भूमिका अपतृणों से ग्रसित जलाशयों में और भी बढ़ जाती है क्योंकि ऐसे जलों में स्वाभाविक प्लवक खाद्य श्रृंखला का आधार अत्यंत ही कमजोर होता है। कॉटी झील मुजफ्फरपुर एवं मुक्तापुर झील समस्तीपुर में अध्ययन से पता चला है कि आम तौर पर इस समुदाय की संरचना पीत हरित शैवाल (डायटम) के संख्या पर संचालित होता है क्योंकि इस वर्ग के शैवाल की उपस्थिति सबसे अधिक पायी गयी है। अधिपादप एवं प्लवक के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि जहाँ प्लवक सैकड़ों में उपलब्ध हैं वहीं अधिपादप हजारों में मिलता है।कॉटी झील में 972-4897 संख्या प्रतिवर्ग से. मी. तथा मुक्तापुर झील में 850-5300 संख्या प्रतिवर्ग से. मी. ।अधिपादप समुदाय के जीवों में शैवाल के साथ साथ जन्तु वर्ग के जीव विशेषकर प्रोटोजोवा एवे रॉटीफर भी पाये जाते हैं। इसलिए चाटकर खानेवाले जन्तु तथा मछलियों के लिए अधिपादप विकसित स्थल एक उत्तम चारागाह होता है।

जिन मछलियों के मुँह की बनावट कटोरीनुमा एवं नीचे की ओर झुकी हुई होती है, जैसे कि रोहु तथा कॉमन कार्प आदि, वह अधिपादप को विशेष रूप से चरती हैं।अतः ये सूक्ष्मजीवी समुदाय मछली के आहार श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी होने के साथ इन जलीय पारिस्थितिकी के विघटित ऑक्सीजन में भी वृद्धि करते हैं ।उत्तर बिहार के मान में अक्सर यह पाया जाता है कि रोहु मछली का, तुलनात्मक दृष्टि से, अधिक विकास होता है और शायद इसका कारण अपतृण से पटे हुए इन झीलों में अधिपादप के रूप में उन्हें प्रचुर आहार का मिलना है।

4.4.3 मान में जलीय अपतृणों का विस्तार एंव भूमिका

4.4.3.1 अपतृण का विस्तार तथा जीवमात्रा

कोसी-गंडक तल क्षेत्र के मानों में जलीय पौधों का अत्यधिक जमाव पाया जाता है। यह जल में उपलब्ध पोषक तत्वों के बड़े भाग का उपयोग कर लेते हैं। फलस्वरूप, दिन-प्रति-दिन इनके जीवमात्रा बॉयोमास में वृद्धि हो रही है। जलीय पौधों के प्रकृति तथा प्रसार पर दृष्टिपात करने पर देखा जाता है कि इस तल क्षेत्र के झील में चार वर्ग के जलीय पौधें हैं (क) तैरने वाले पौधे (ख) निमग्न पौधे (ग) निर्गत पौधे एवं (घ) सीमान्त पौधे। आम स्थानिय भाषा में दल कहे जाने वाले निमग्न पौधे जैसे कि *हॉयड्रिला, सेराटोफॉयलम, नॉजास, पोटामाजेटोन* आदि प्रजातियों की उपलब्धता सबसे अधिक है। इसी वर्ग का *वॉलेसनेरिया* भी किसी किसी झील में काफी अधिक मात्रा में पाया जाता है । इस क्षेत्र के झील में अपतृण का, जल के सतह, पर विस्तार 40 प्रतिशत से 100 प्रतिशत है एंव बंद झीलों में इनका प्रसार अपेक्षाकृत अधिक है।इधर कुछ वर्षों से सतही अपतृण का विस्तार बढ़ा है लेकिन अभी बंगाल अथवा असम की तुलना में इसका विस्तार बिहार में कम है । इन झीलों में वैज्ञानिक शोध के दौरान अपतृण की औसतन जीवमात्रा अथवा घनत्व 4.0 किलोग्राम से 28.0 किलोग्राम के बीच पाया गया है (सारणी संख्या 7)।

सारणी संख्या 7: झील में अपतृण जीवमात्रा

झील	**जीवमात्रा** (किलो/वर्ग मीटर)
ब्रह्यपुरा, मुजफ्फरपुर	4.0-22.0
मनीका, मुजफ्फरपुर	8.0-25.0
काँटी, मुजफ्फरपुर	6.0-12.0
मोतीझील, मोतीहारी	6.0-28.0
मुक्तापुर, समस्तीपुर	7.0-13.8

4.4.3.2 जलीय पौधों की मान परितंत्र में भूमिका

किसी भी जलीय परितंत्र में जलीय पौधों की आंशिक उपस्थिति उस परितंत्र को स्थायित्व प्रदान कर उत्पादकता के लिए ठोस आधार प्रदान करती है। लेकिन ये जलीय पौधे जब अपतृण का स्वरूप ले लेते हैं तो परितंत्र की उत्पादन प्रक्रिया में विकृति उत्पन्न हो जाती हैं। (झींगरन 1975, 76, झा 1993, 95)। इस तल क्षेत्र के झीलों में अत्यधिक अपतृणों के कुप्रभाव निम्नलिखित हैं:-

क) जलीय पौधों के अधिक जीवमात्रा एवं प्रसार से छोटी तथा शिकारी वर्ग के मछलियों में बढ़ोतरी हो जाती है।

ख) अच्छी प्रजातियों के मत्स्य समुदाय, जैसे कि कार्प वर्ग की संख्या तथा विकास में ह्रास।

ग) प्लवक समुदाय के जीवों की मात्रा तथा प्रकार में कमी तथा वर्ग विशेष के प्लवकों का अत्यधिक उत्पादन।

घ) जलीय पौधों द्वारा पोषक तत्वों, विशेषकर फॉस्फेट का शोषण और इस प्रकार पोषण न मिलने के कारण वनस्पति वर्ग के प्लवकों में कमी। अतः जलीय खाद्य श्रृंखला में बिखराव।

ङ) जलीय क्षारीयता में अत्यधिक वृद्धि से उत्पादन प्रक्रिया बाधित।

च) झील के तलछटों में मरे हुए अपतृणों के निरंतर जमाव से कार्बनिक प्रदूषण का होना एवं जल ग्रहण क्षमता में कमी।

छ) पौधों के अधिक जमाव से प्रारंभ में हयूमस बनाता है जिस पर कलांतर में पौधों का जमाव होकर तैरते भू खंड का निर्माण हो जाता है जो अंत में झील के किनारे लग जाते हैं और इस प्रकार साल दर साल जलीय क्षेत्र में कमी आती जाती है।

ज) मत्स्य परिग्रहण एवं पालन में कठिनाई, कारण जालों के समुचित संचालन में बाधा।

इस क्षेत्र के मान में किए गए शोध से ऐसा लगता है कि इन जलाशयों में अपतृण की अवस्था एक विशेष अनुक्रमण के दौर से गुजर रहा है।

प्रक्रम संचित्र 1 में उद्यृत अपतृण अनुक्रमण के संदर्भ में कोसी-गंडक तलक्षेत्र के मान इस प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में हैं। उदाहरण के तौर पर मुजफ्फरपुर के पास स्थित अखाराघाटमान तथा जपाहामान अनुक्रमण के पाँचवें दौर से गुजर रहे हैं । इसी प्रकार काँटीमान (मुजफ्फरपुर) एवं मोतीझील (मोतीहारी) अनुक्रमण के चौथे दौर में है। मुजफ्फरपुर का ही मोतीझील अनुक्रमण के छठे दौर को पार करके मानव अबादी में परिवर्तित हो चुका है।

वैसे, उत्तर बिहार के मान में जलीय पौधों के जीवमात्रा (बायोमॉस) में उतरोत्तर बृद्धि एवं इनके अनुक्रमण से ऐसा प्रतीत होता है कि इन जलाशयों में मछली उत्पादन की प्रक्रिया प्रतिवर्ती (रेट्रोग्रेसिव) दिशा की ओर अग्रसर रहा है (प्रक्रम संचित्र संख्या 2) I

4.4.4 मान के तलछट में जन्तुओं की अवस्था

कोसी-गंडक तल क्षेत्र के मान तल छट पर पाये जाने वाले जन्तुओं की संख्या 220 से 5414 प्रति वर्ग मीटर पायी गयी है और इसमें घोंघे का योगदान सबसे अधिक (94-96%) होता है । आश्चर्य की बात है कि सीपी की संख्या लगभग नगण्य पायी जाती है । ऐसा लगता है कि इस तल क्षेत्र के झीलों का तलछट परिक्षेत्र उत्पादकता के मापदण्ड के अनुसार निम्न ऊपज की अवस्था में पहुँच गये हैं । घोंघे की अत्यधिक उपलब्धता तभी सम्भव हो पाती है जब प्रचुर मात्रा में कैलशियम मौजूद हो और इस अवस्था में जल की क्षारीयता अत्यधिक बढ़ जाती है और अगर यह प्रक्रिया कुछ समय तक जारी रहती है तो जल के बंजर हो जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है । अत्यधिक कैलशियम की उपस्थिति के कारण *कैलकशिफोब* नामक अवस्था का उदय हो जाता है जिससे अनेक प्रकार के जीव जन्तुओं पर विपरीत असर पड़ता है और इनके लुप्त हो जाने का खतरा रहता है ।

घोंघे के अतिरिक्त तल छट में रेंगने वाले जन्तु जैसे कि कायरोनोमिडस, ओलीगोकीट, काबोरस आदि भी पाये जाते हैं लेकिन इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है । कुछ झील विशेष में, जैसे ब्रह्मपुरा मुजफ्फरपुर में, इनकी संख्या घोंघे से अधिक पायी जाती है और इसका कारण है इस जल में प्रवाहित होने वाले शहरी कचरे ।

4.4.5 मान जल संसाधनों में मात्स्यिकी की अवस्था

कोसी-गंडक तल क्षेत्र के झील सदियों से मत्स्य प्रग्रहण के उत्तम संसाधन रहे हैं । इन झीलों से विभिन्न प्रकार के मछलियों का शिकार प्रचुर मात्रा में किया जाता रहा हैं। लेकिन इधर कुछ वर्षों से इनके पारिस्थतिकी में इतनी तेजी से परिवर्तन हो रहा है कि अब

प्रक्रम संख्या 1: अपतृण में अनुक्रमण की अवस्था

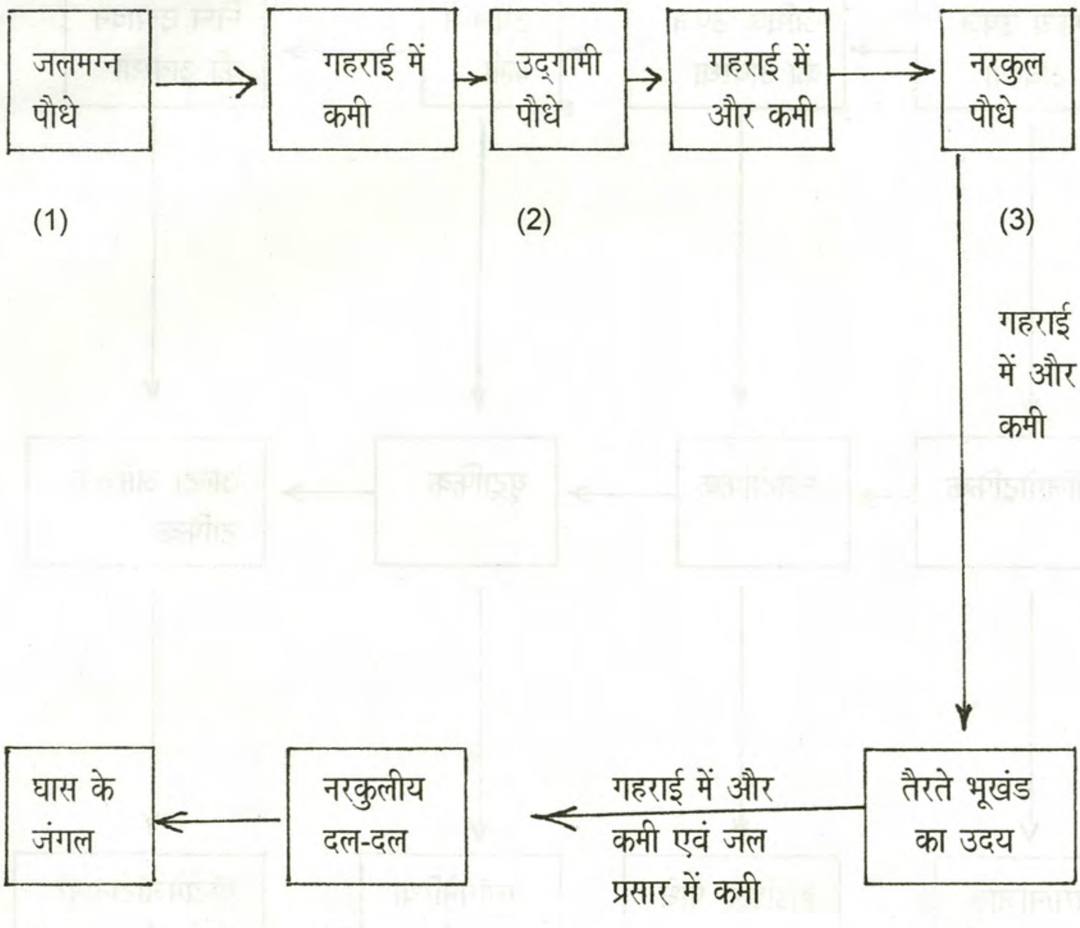

प्रक्रम संख्या 2: झीलों के अनुक्रमण की अवस्था अपतृण के सम्बन्ध में ।

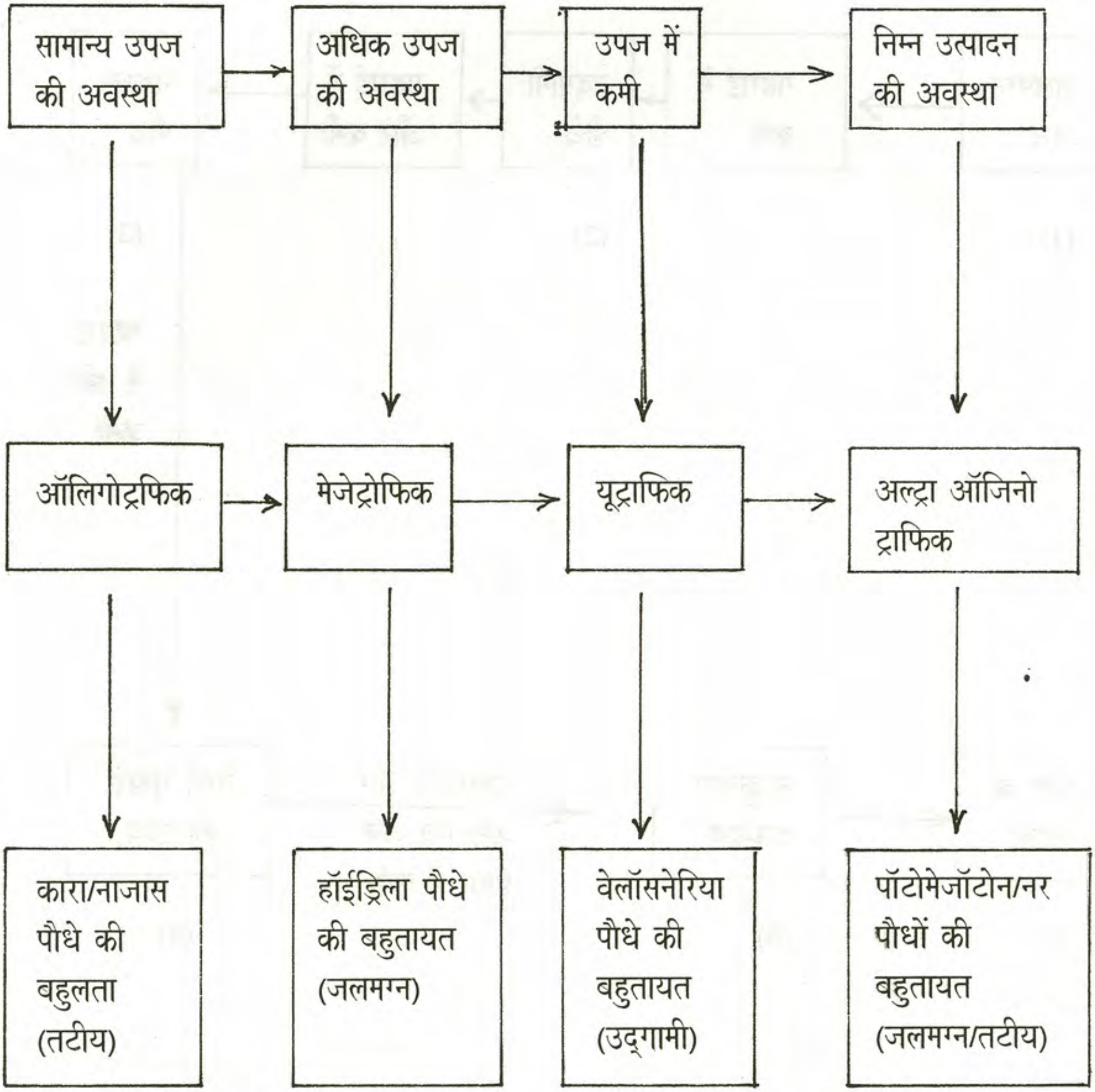

इनकी मात्स्यिकी पहले की तरह लाभदायक नहीं रह गयी है । इन जलाशयों में हो रहे मात्स्यिकी की वर्तमान अवस्था, आर्थिक दृष्टिकोण से, निम्न स्तर की है । सर्वेक्षण से पता चला है कि अच्छी किस्म की मछलियों, विशेषकर भारतीय कार्प, के उत्पादन तथा प्रग्रहण में अत्यधिक कमी आ गयी है। इसके विपरीत छोटी मछलियों,जिनका वर्ष भर में कई बार प्रजनन होता है, की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हो गयी है । फलस्वरूप, इन छोटी मछलियों को खाने वाली शिकारी मछलियाँ भी विशेष रूप से बढ़ी है । मात्स्यिकी के वर्तमान अवस्था के लिए अनेक कारण जिम्मेदार हैं । जैसे कि (क) बंध झीलों में कार्प मछलियों, रोहू, कतला, मृगल आदि का प्रजनन नहीं हो पाता अतः नियमित प्रत्यारोपन के अभाव में इनकी मात्स्यिकी कुंठित हो गयी है । (ख) खुली झील तथा नदियों को जोड़ने वाले बाहिका के अवरूद्ध हो जाने की अवस्था में नदी से अच्छी किस्म की मछली के बच्चों का स्वाभाविक प्रत्यारोपन नहीं हो पा रहा है । फलस्वरूप, झील में आशानुसार मात्स्यिकी का विकास नहीं हो पाता है । (ग) बड़ी मछलियों के शिकार नहीं कर पाने की अवस्था में शिकारी मजबूरन छोटे फन्दों के जालों का प्रयोग करने लगे हैं और इस प्रक्रिया में हर प्रकार की छोटी मछलियों को पकड़ लिया जाता है । इस तरह किशोर अवस्था की कार्प मछलियों का बड़े पैमाने पर हत्या कर दिया जाता है । घ) जलीय पौधों के अत्यधिक जमाव से पोषक तत्वों का जलीय पौधों द्वारा अत्यधिक उपयोग होता है। इससे अन्य उपयोगी जीव जन्तुओं के मात्रा में कमी आ जाती है और कार्प मछलियों के लिए उपयुक्त आहार की कमी हो जाने से उनकी वृद्धि पर असर आया है।

इस तल क्षेत्र के मान में हो रहे मात्स्यिकी के वर्तमान अवस्था पर दृष्टिपात करने पर, सामान्यतः यह देखने को मिलता है कि पकड़ी गयी मछलियों में अधिकतर (50 प्रतिशत से 60 प्रतिशत तक) छोटी अथवा मध्यम वर्ग की मछलियाँ होती हैं जिनका मूल्य अपेक्षाकृत कम होता है । वर्तमान सर्वेक्षण के दौरान यह भी देखने को मिला है कि एक शिकारी को प्रति दिन औसतन 300 ग्राम से 500 ग्राम ही मछली मिल पाती है और वह भी मिली-जुली छोटी प्रजातियों की। सारणी संख्या - 8 में कुछ प्रमुख मान के मछली उत्पादन के आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं ।

सारणी संख्या 8 :- मानों में मात्स्यकी के आंकड़े (कुल मात्रा का प्रतिशत)

मान	कार्प मछली	शिकारी मछली	छोटी किस्म की मछली	छोटे झींगे
मनीका मुजफ्फरपुर	3.09-14.67	23.24-43.50	39.08-50.00	3.0-19.40
ब्रह्मपुरा मुजफ्फरपुर	3.88-22.0	18.90-24.00	53.71-55.75	3.25-8.57
काँटी मुजफ्फरपुर	12.25-12.85	53.81-62.16	18.48-22.99	7.11-10.35
मुक्तापुर समस्तीपुर	9.03-21.00	14.99-24.67	53.77-60.08	3.93-12.53
मोतीझील मोतीहारी	2.41-6.22	20.39-31.12	51.0-55.32	2.70-6.12

5 उत्तर बिहार के चौर जल संसाधन

उत्तर बिहार का उत्तर-पूर्वी भाग विवर्तनिक गर्त वाला क्षेत्र हैं (टेक्टोनिक डीप्रेस्ड लैंड) और वर्षा काल में यह भू भाग एक जल पट्टी के रूप में दिखता है क्योंकि बाढ़ का पानी विस्तृत क्षेत्र में फैल जाता है । वर्षा ऋतु के पश्चात् इस क्षेत्र में अनेक छोटे तथा बड़े, लगभग गोलाकार, जलाशय देखने को मिलते हैं। ये जलाशय विवर्तनिक गर्त में जमे बाढ़ के जल से बनते हैं और कालान्तर में झील का स्वरूप ले लेते हैं । इस तरह के झील का उदय बाढ़ बहुल्य क्षेत्र में होता है जहाँ बाढ़ का आना एक नियमित प्रक्रिया है । स्थानीय भाषा में इस प्रकार के बाढ़ बहुल झील को "चौर" के नाम से जाना जाता है । उत्तर प्रदेश में इन्हें

झील तथा असम और बंगाल में बील कहा जाता है । आम तौर पर 'मान' तथा 'चौर' के पहचान में अक्सर कठिनाई होती है क्योंकि इनके उदय के सूक्ष्म पहलुओं पर ध्यान नहीं दिया जाता है । इस क्षेत्र के सर्वेक्षण के दौरान यह देखने को मिला है कि आम आदमी ही नहीं प्रदेश के विकास अधिकारी भी अक्सर 'चौर' को भी मान कह देते हैं, जबकि इनके प्रकृति, उदय तथा आकार में अत्यधिक विभिन्नता है ।

इस विरोधाभास के परिपेक्ष्य में हमने मान तथा चौर के सही वर्गीकरण एवं पहचान के लिए एक कुंजी बनाने का प्रयास किया है जो सारणी संख्या 9 में उल्लेखित है ।

सारणी संख्या 9 :- मान तथा चौर में भेद

मान	चौर
मान की परिसीमा बिल्कुल स्थिर तथा निर्धारित होती है ।	चौर की परिसीमा स्थिर नहीं होती है । यह फैलता और सिकुड़ता रहता है ।
मान का उदय नदी द्वारा होता है । अतः इनका आकार सर्पाकार अथवा अंग्रेजी के 'यू' या 'एल' की तरह होता है।	चौर का कोई निर्धारित आकार नहीं होता बल्कि विर्वतनिक गर्त के आकार पर निर्भर करता है । वैसे इन्हें लगभग गोलाकार कह सकते हैं ।
मान का तटीय विस्तार लगभग सीधा होता है, क्योंकि इनकी तटीय रेखा कम टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं ।	चौर की तटीय रेखा अत्यधिक टेढ़ी-मेढ़ी होती है । इसलिए इसका विस्तार भी टेढ़ा-मेढ़ा होता है ।
मान अधिकतर चौर के तुलना में गहरे होते हें ।	चौर सामान्यतः छिछले होते हैं ।

मान में नदी के जल का प्रवेश हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। यदि नदी और मान को जोड़ने वाली वाहिका है तो जल का प्रवेश होगा और अगर वाहिका नहीं है या किसी कारण से अवरूद्ध है तो जल का प्रवेश नहीं होगा ।	चौर की संरचना ऐसी होती है कि इनमें बाढ़ के समय नदी के जल का प्रवेश निश्चित है । वैसे भी चौर बाढ़ के पानी को आत्मसात कर इसके गति में कमी लाते हैं ।
मान में जलीय पौधों का जमाव कम अधिक होता है कारण जल का सिकुड़न अपेक्षाकृत कम होता है। साथ ही साथ ही वर्षा काल में नदी से अथवा आवाह क्षेत्र से जो जल प्रवेश करता है उसमें इतनी तीव्रता नहीं होती कि पौधों को उखाड़ सकें ।	चौर में जलीय पौधों का जमाव अपेक्षाकृत होता है, क्योंकि इनमें जल के सिकुड़ने का क्षेत्र बहुत अधिक होता है । बाढ़ के पानी का तीव्रता के साथ प्रवेश भी जलीय पौधे के जमाव को कम कर देता है ।
मान का क्षेत्रफल चौर से प्राय अधिक होता है ।	चौर का क्षेत्रफल मान से कम तो अवश्य होता है लेकिन कभी कभी विशेष विर्वतनिक गर्त के कारण कई चौर एक समूह के रूप में पाये जाते हैं और लगता है कि इसका क्षेत्रफल बहुत अधिक है ।
मान विशुद्ध रूप से पारिवार्षिक होते हैं ।	चौर पारिवार्षिक या मौसमी हो सकते हैं ।

5.1 उत्तर बिहार में चौर संसाधन का विस्तार

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि चौर विर्वतनिक गर्त तथा बाढ़बहुल्य क्षेत्र में पाये जाते हैं अत कोसी गंडक तल क्षेत्र के एक बड़े भू-भाग में चौर का विस्तार है ।

कोसी-गंडक तल क्षेत्र में पाये जाने वाले चौर संसाधन के क्षेत्रफल के सम्बन्ध में बहुत विरोधाभास हैं क्योंकि सही अर्थों में न तो इसकी पहचान हो पायी है और न इसके विस्तार के बारे में कोई ठोस आंकड़े उपलब्ध हैं । इस विरोधाभास का मुख्य कारण है समय के साथ चौर के बदलते क्षेत्रफल । जल के इस संसाधन का सर्वेक्षण अगर वर्षा काल या तुरन्त इसके बाद किया जाय तो इसका क्षेत्रफल बहुत अधिक होगा । लेकिन इसी कार्य को अगर अन्य समय में किया जाय तो क्षेत्रफल कम हो जायगा । असल में मात्स्यिकी के दृष्टिकोण से आज तक इस संसाधन का सही मूल्यांकन नहीं हो पाया है । उत्तर बिहार के कोसी गंडक क्षेत्र में दो प्रकार के चौर पाये जाते हैं ।

क) पारिवार्षिक चौर

पारिवार्षिक चौर में जल के सिकुड़न तथा गहराई की एक न्यूनतम सीमा होती है यानी बाढ़ का पानी एक हद तक ही सिकुड़ता है और तत्पश्चात् यह झील का रूप ले लेता है ।

ख) मौसमी चौर

मौसमी चौर वर्षाकाल और इसके कुछ महीने बाद तक अस्तित्व में रहते हैं । तत्पश्चात् यह बिल्कुल ही सूख जाते हैं । वास्तविकता यह है कि विर्वतनिक गर्त की स्थिति पर पारिवार्षिक अथवा मौसमी चौर का अस्तित्व निर्भर करता हैं । अधिक गर्त वाले क्षेत्र में पारिवार्षिक तथा कम गर्त वाले क्षेत्र में मौसमी चौर की उपस्थिति देखी जाती है ।

बिहार सिंचाई विभाग द्वारा संकलित चौर के आंकड़े सारणी संख्या 10 में दिय गये हैं । इस सारणी में दिये गये चौर मात्स्यिकी के लिए उपयुक्त हैं क्योंकि ये पारिवार्षिक हैं

तथा इनका क्षेत्रफल 100 हे. से अधिक है । चौर संसाधन बहुमिल्कियत वाली सम्पति है जिसमें सरकार के साथ साथ आम जनता भी आती है । ये जलीय संसाधन बहु उपयोगिता वाले हैं क्योंकि इनका उपयोग कृषि, बागवानी, ग्रामीणो की अन्य जरूरतों तथा मात्स्यिकी के लिए होता है ।

सारणी संख्या 10 में उद्यृत आंकड़ों के अनुसार इस क्षेत्र में लगभग 45978 हे. चौर संसाधन है जो पारिवार्षिक होने के कारण इनमें मछली तथा मखाना की खेती होती है ।

सारणी संख्या 10 उत्तर बिहार में चौर संसाधन

जनपद	**क्षेत्रफल** (हेक्टर)
बेगुसराय	7000
पु चम्पारण	850
प चम्पारण	882
मुजफ्फरपुर	680
दरभंगा सीतामढ़ी सहित	12141
वैशाली	13500
सहरसा	1425
सारन गोपालगंज सिवान सहित	10000
कुल योग	**45,978 हेक्टर**

कृषि कार्य में उपयोगिता के अनुसार इस क्षेत्र में दो प्रकार के पारिवार्षिक चौर पाए जाते हैं -

क) वैसे चौर जिनमें मखाना, सिंधाड़ा एवं कमल की खेती होती है। साथ ही मत्स्य पालन एवं प्रग्रहण भी होता है। इस प्रकार के चौर में अपतृण का अपेक्षाकृत कम जमाव पाया जाता है।

ख) वैसे चौर जिनमें तुलनात्मक दृष्टिकोण से जल की गहराई कम होती है तथा उपेक्षित हैं। इस प्रकार के चौर में प्राकृतिक जलीय पौधे का जमाव अधिक होता है एवं छोटी प्रजातियों की मछली, घोंघें, झीगें आदि पकड़े और बेचे जाते हैं। इन चौरों में वायु-श्वासी मछलियाँ, मांगुर, सिंघी तथा कवई का प्रचुर मात्रा में प्रग्रहण होता है।

5.2 कोसी गंडक तल क्षेत्र के कुछ प्रमुख चौरों की व्याख्या

कोसी-गंडक तल क्षेत्र को चौर के विस्तार तथा प्रमुखता के आधार पर चार मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त वैशाली जनपद में एक और चौर है जो महत्वपूर्ण है जिसे वरैला चौर के नाम से जाना जाता है।

क) काबर चौर क्षेत्र

ख) कुशेश्वर स्थान चौर क्षेत्र

ग) सिमरी बक्तियारपुर चौर क्षेत्र

घ) गोगा चौर क्षेत्र।

5.2.1 काबरताल (25^0 30' उत्तर तथा 87^0 40' पूर्व)

काबरताल बेगुसराय शहर के उत्तर में 22 किलोमीटर की दूरी पर मंझोल नामक गाँव में स्थित है। इस चौर का विशेष महत्व है क्योंकि प्रत्येक वर्ष हजारों की संख्या में भ्रमणकारी पक्षियाँ यहाँ जाड़े के मौसम आती हैं और इसलिए यह एक पर्यटन स्थल भी है।आर्थिक

दृष्टिकोण से यह चौर अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। कृषि के विकास में इसके योगदान के साथ साथ मत्याखेट के लिए भी यह एक उत्तम श्रोत है।

काबर ताल का फैलाव लगभग 16 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में है । इस चौर का वास्तविक क्षेत्रफल घटता बढ़ता रहता है । वर्षा काल में इसका फैलाव लगभग 4500 हेक्टयर से भी अधिक हो जाता है लेकिन गर्मी के दिनों में यह सिकुड़ कर लगभग 400 हे. के आसपास रह जाता है ।

काबर ताल विवर्तनिक गर्त का एक सुन्दरतम नमूना है । अत: आसपास के क्षेत्र से जल आकर इसमें जमा हो जाता है । वूढ़ी गंडक नदी जब बाढ़ की अवस्था में होती है तो इसका जल भी इस चौर में आ जाता है । करेह तथा बागमती नदियाँ जो करीब 78 कि. मी. की दूरी पर हैं का भी पानी इस चौर में आता है । इस चौर की गहराई 0.4 मीटर से 5.5 मीटर के बीच पायी जाती है ।

5.2.1.1 काबर ताल में जैविक अवस्था

क) प्लवक

काबर ताल का जल एक बड़े क्षेत्र में फैलने तथा इसका तटीय क्षेत्र छिछला होने के कारण पूरे जल तंत्र में सूर्य की रोशनी का समावेत प्रवेश होता है । फलस्वरूप नील हरित सैवाल तथा पीत हरित शैवाल वर्गीय प्लवक की अधिकता पायी जाती है । नील हरित प्लवक के बाहुल्यता का कारण जल क्षेत्र की परिधि, विशेषकर खेतों, से आने वाले पोषक तत्व को भी दिया जा सकता है । उपलब्ध सीमित आंकड़ों के अनुसार प्लवक की जीव मात्रा संख्या 800 से 2500 संख्या प्रति लीटर के बीच है । जन्तु प्लवक समुदाय में रोटीफर तथा कोपीपोड की अधिकता देखी गई है ।

ख) अपतृण

कावर ताल में अपतृण का भारी जमाव देखा जा सकता है और जल के ऊपरी सतह पर जल कुंभी का फैलाव लगभग 60 से 70 प्रतिशत तक है । निमग्न वर्ग के अपतृणों में *हाइड्रिला वर्टिसिलेटा, पोटेमेजोटॉन पेक्टीनेटस, वेलेसनेरिया स्पाईरेलिस, सेराटोफाइलम डेमर्सम, नाजास माइनर* आदि प्रमुख हैं । निर्गत वर्ग के पौधों में कमल (*निलम्बो न्युसिफेरा*), छोटी कुमोदनी (*निम्फोइडिस इंडिका*), बड़ी कुमोदनी (*निम्फिया*) अादि प्रमुख है । सीमान्त पौधों में करमी (अ*इपोमिया एक्वाटिका*), खर (*क्रिपस क्रिपस*) आदि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं । सीमान्त क्षेत्र में शैवाल वर्गीय पौधों (*कारा एवं नाइटेला*) आदि भी काफी मात्रा में उपस्थित पाये जाते हैं । अपतृण के जीव मात्रा में परिवर्तन होता रहता है । वर्षा के बाद जब जलकुंभी (अ*ईक्रोनिया क्रेसीपस*) का फैलाव बढ़ता है तो 15-20 किलो तक अपतृण प्रति वर्ग मीटर मिल सकता है । अन्यथा यह 5-8 कि. ग्रा. प्रति मीटर होता है ।

ग) मत्स्य प्रजाति

कावरताल में अनेक प्रकार की छोटी बड़ी मछलियाँ मिलती हैं । एक अनुमान के अनुसार इसमें 40 प्रजाति की मछली पायी जाती हैं । बड़ी मछलियों में (कतला कतला), रोहू (*लेबियो रोहीता*), नैन (*सिरहिनस मृगला*), बोवारी (*वेलागो आट्*) आदि प्रमुख है । छोटी मछलियों में कवई (अ*नावास टेस्टुडिनियस*) की बाहुल्यता देखी गई है । लेकिन अन्य छोटी मत्स्य प्रजातियाँ भी काफी मात्रा में है ।

मछली के साथ साथ घोंघे, कछुआ, केंकड़े आदि भी बहुतायत में पाये जाते हैं और उनका शिकार भी किया जाता है ।

5.2.1.2 काबर ताल में मात्स्यिकी की अवस्था

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि काबर ताल में छोटी मछलियों की बहुतायत है क्योकि इसके क्षेत्रफल का अधिकतर भाग छिछला है । छोटी मछलियों के प्रचुर मात्रा में उपलब्धि ही शायद हजारों भ्रमणकारी पक्षियों को दावत देती है । सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त किये गए आंकड़ों के अनुसार प्रति दिन लगभग 1500 से 2200 कि. ग्रा. मिली-जुली मछलियों का प्रग्रहण होता है । प्रग्रहित मछलियों में छोटी तथा मध्यम प्रजाती वाले मछलियों का योगदान समान्यत 60 से 65 प्रतिशत होता है । बाकी के 40 अथवा 35 प्रतिशत में शिकारी मछलियों का प्रतिशत 25 से 30 प्रतिशत तथा बड़ी कार्प मछली मात्र 5-10 प्रतिशत होती है ।

घोंघे तथा झींगों की मात्स्यिकी भी काफी प्रचलित है । कभी कभी केंकड़े भी बहुतायत में पकड़े और बेचे जाते हैं ।

काबर ताल जैव विवधता का एक विशिष्ट श्रोत है। अतः इस चौर का विस्तृत वैज्ञानिक अध्ययन करने की आवश्यकता है ताकि वनस्पति तथा जन्तु वर्ग के समस्त जीवों की उपस्थिति पर ठोस आंकड़े उपलब्ध हो सके ।

5.2.2 कुशेश्वर स्थान चौर

दरभंगा जनपद में स्थित यह एक अतिविशिष्ठ जल संसाधन है जो दरभंगा से लगभग 65 कि. मी. की दूरी पर स्थित है । इस चौर का क्षेत्रफल मौसम के अनुसार बदलता रहता है । वर्षाकाल में इसका फैलाव 100 वर्ग कि. मी. से अधिक हो जाता है तथा छोटी छोटी नदियों के माध्यम से यह सीमरी बख्तियारपुर तथा काबर ताल से जुड़ जाता है । वैसे सामान्य तौर इसके जल का विस्तार 18-20 वर्ग कि. मी. के आसपास रहता है । इसमें आवाह क्षेत्र से आये वर्षा के पानी के अतिरिक्त कमला, बागमती, करेह आदि नदियों का जल भी आकर जमा होता है ।

5.2.2.1 कुशेश्वर स्थान चौर में जैविक अवस्था एवं मात्स्यिकी

अपतृण

कुशेश्वर स्थान जल तंत्र जलीय पौधों से पटा हुआ है । जलकुंभी (अ*/इकोर्निया क्रेसीपस*) का विस्तार विशेष तौर पर जल के सतह पर फैला हुआ दिखता है और अनुमानतः इसका विस्तार 60-80 प्रतिशत तक है । निमग्न, निर्गत तथा सीमान्त पौधों का जमाव तथा प्रकार लगभग कावरताल की तरह ही है । चौर के कुछ हिस्सों में विशेषकर छिछले एवं अपतृण के कम जमाव वाले स्थानों पर शैवाल पुष्प पुंज भी देखने को मिलता है । जैव विविधता के विस्तृत अध्ययन पर प्रतिवेदन उपलब्ध नहीं है अतः इस विशाल जलतंत्र के इस आयाम पर वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है ।

मात्स्यिकी

कुशेश्वर स्थान मात्स्यकी का एक उत्तम श्रोत है और सदियों से मत्स्य प्रग्रहण होता आ रहा है । ऐसा अनुमान है की प्रति दिन इस जलाशय से 3000 से 4000 कि. ग्रा. मछली पकड़ी जाती है जिसका निर्यात प्रदेश के अन्य शहरों अथवा प्रदेश से बाहर होता है ।

इस जल तंत्र का एक बड़ा हिस्सा निजी क्षेत्र में पड़ता है । मत्स्य प्रग्रहण के लिए अधिकार सरकार के साथ साथ जल के निजी मालिकों द्वारा भी दिया जाता है जिसके लिए मत्स्य सहकारी समितियों को उचित मूल्य चुकाना पड़ता है । आम तौर पर यह अधिकार एक साल के लिए मान्य होता है ।

यह एक विरोधाभाष ही है कि निरंतर मछली देने वाली इस जल स्त्रोत पर मात्स्यिकी के ठोस आंकड़े उपलब्ध नहीं है ।

5.2.3 गोगा चौर

गोगा चौर को स्थानीय तौर पर गोगा बील के नाम से जाना जाता है जो कटिहार से लगभग 32 कि. मी. की दूरी पर स्थित है । गोगा चौर वास्तविकता में अनेक छोट बड़े चौरों का एक समूह है और यह लगभग 5 वर्ग कि मी क्षेत्र में फैला हुआ है । भ्रमणकारी तथा स्थानीय पक्षियों के लिए यह एक उत्तम चारागाह है और लगभग 100 से अधिक प्रजाती के पक्षी यहाँ देखने को मिलते हैं । इस चौर में सालों भर मात्स्यिकी होती है ।

इस चौर में मुख्यत वर्षा का पानी एकत्रित होने के साथ ही महानन्दा नदी का जल भी बाढ़ के समय आता है । यह एक पारिवार्षिक चौर है लेकिन इसका जल क्षेत्र के विस्तार में मौसम के अनुसार परिवर्तन होता रहता है । इसके जल का उपयोग कृषि कार्य के लिए भी होता है ।

घोघा चौर का जैविक दृष्टिकोण से अध्ययन नहीं हो पाया है अत आंकड़े उपलब्ध नहीं है । वैसे इसमें अपतृण के विभिन्न प्रजाति तथा मछलियों, विशेष कर छोटी मछलियों, के अनेक प्रजातियाँ पाई जाती है । चूंकि सरकार इस चौर को प्रति वर्ष मत्स्य परिग्रहण का अधिकार स्थानीय लोगों को देती है, अतः बड़ी मछलियों का परिग्रहण भी अवश्य ही लाभदायक स्तर का होगा । वैसे मात्स्यकी के दृष्टिकोण से समुचित आंकड़े उपलब्ध नहीं है । इस जलाशय का वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है ताकि मात्स्यिकी का विकास वैज्ञानिक पद्धति से किया जा सके ।

5.2.4 सीमरी बख्तियारपुर चौर

अनके छोटे बड़े चौरों का समुह है सीमरी बख्तियारपुर चौर जिसे स्थानीय लोग झील कहते हैं । यह सहरसा के दक्षिण में 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित है । सीमरी बख्तियारपुर चौर तंत्र के कुछ प्रमुख चौर है यमुनिया, गोवराहा, सरडिहा, कुम्ही आदि । वर्षा काल में इस चौर समूह का पानी एक विशाल क्षेत्र में फैल जाता और इसका फैलाव एक तरफ कुशेश्वर

स्थान तथा दूसरे तरफ काबर ताल तक हो जाता है । उस अवस्था में काबर ताल से कुशेश्वर स्थान तक की जल यात्रा सीमरी बख्तियारपुर चौर से होकर किया जा सकता है ।

5.2.5 बरैला चौर, वैशाली

बरैला चौर हाजीपुर से करीब 20 कि. मी. की दूरी पर उत्तर पूर्व दिशा में स्थित है एवं वैशाली जनपद का सबसे बड़ा जलाशय (390.8 हे.) है । इसमें आवाह क्षेत्र के अतिरिक्त बूढ़ी गंडक के कुछ सहायक नदियों का भी जल बाढ़ के दिनों में आता है । इसके जल का उपयोग कृषि तथा बागवानी के लिए भी किया जाता है । मात्स्यिकी सालों भर चलती रहती है ।

चौर के प्रकृति अनुसार ही इसमें अपतृण की जीवमात्रा काफी अधिक है । शैवाल की उपस्थिति भी उल्लेखनीय है । मात्स्यिकी मुख्यत: छोटी प्रजातियों अथवा शिकारीवंश के मछलियों पर आधारित है । मत्स्य जीवी समुदाय के कथनानुसार लगभग 100-300 कि. ग्रा. मछली का प्रगहण प्रति दिन होता है लेकिन छोटे किस्म की प्रजातियों की अधिकता के कारण इनका आर्थिक मुल्य अपेक्षाकृत कम है । वर्तमान सर्वेक्षण से पता चला है कि भारतीय कार्प मछलियों का प्रग्रहण 4 से 6 प्रतिशत के बीच रहता है । एक मछुआरे को प्रति दिन औसतन 15 से 20 रूपये की आमदनी हो पाती है ।

बरैला चौर के सीमान्त छिछले क्षेत्र में घोंघे की भी मात्स्यकी एक आम दृश्य है । विशेषकर जाड़े तथा बसन्त ऋतु में जब जल का स्तर कम हो जाता है । घोंघोके एकत्रिकरण में आम तौर पर महिलाएँ एवं बच्चों को कार्य करते देखा जा सकता है ।

गर्मी के मौसम में जब जल स्तर विशेष रूप से कम हो जाता है तो निमग्न अपतृणों के बीच से चुन-चुन कर छोटी प्रजाती के झींगे का शिकार भी किया जाता है ।

6 उत्तर बिहार में नहर संसाधन और इनमें मात्स्यकी की सम्भावनाएँ

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश के कृषि तंत्र को और भी सुदृढ़ बनाने हेतु नहरों का विकास तेजी से हुआ है । विकास के इसी प्रक्रिया की कड़ी है गंडक तल क्षेत्र में तिरहुत नहर का उदय । बाल्मिकी नगर (भैंसालोटन) नामक स्थान में गंडक नदी पर एक बाँध का निर्माण किया गया है और इससे तीन मुख्य नहरें निकाली गयी हैं (1) नेपाल नहर (2) पश्चिमी नहर तथा (3) पूर्वी नहर (गंडक नहर) । प्रथम दो नहर नेपाल तथा उत्तर प्रदेश को जाती हैं । पूर्वी अथवा गंडक नहर उत्तर बिहार में सिंचाई के काम आती है । गंडक नहर को तिरहुत नहर भी कहा जाता है और इसकी दो मुख्य शाखाएँ, डोन नहर तथा त्रिवेणी नहर, हैं । इन शाखाओं के भी शाखाएँ तथा उपशाखाएँ हैं । नहरों का यह ताना बाना इस क्षेत्र के पाँच जनपदों (पूर्वी चम्पारण, पश्चिमी चम्पारण, मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर एवं दरभंगा) में फैला हुआ है । तिरहुत मुख्य नहर की लम्बाई 790 आर. डी. है (1 आर. डी. 1000 फीट)। इस नहर की चौड़ाई लगभग पाँच मीटर एवं गहराई चार मीटर है । तिरहुत नहर में प्रति वर्ष विभिन्न चरणों में 10,000 क्यूसेक से 70,000 क्यूसेक पानी छोड़ा जाता है ।

6.1 गंडक नहर की भौतिक रसायनिक अवस्था

गंडक नहर की भौतिक रसायनिक अवस्था करीब करीब गंडक नदी के समकक्ष ही है । लेकिन क्षारीय प्रचाल का स्तर अपेक्षाकृत कम है । क्षारियता, फॉस्फेट, नाइट्रेट एवं सिलिकेट आदि का स्तर उत्पादकता के दृष्टिकोण से सामान्य हैं (सारणी संख्या 9) ।

सारणी संख्या 9 गंडक नहर से सम्बन्धित कुछ आंकड़े

मद		आंकड़े
1.	उदगम स्थल	बाल्मिकीनगर
9.	लम्बाई (मुख्य नहर)	263 किलोमीटर (790 आर. डी) है ।
3	शाखाओं की लम्बाई	
	i) वैशाली शाखा	*155 आर.डी. (1 आर. डी.=1000 फीट)*
	ii) मल्किपुर शाखा	*113 "*
	iii) जैतपुर शाखा	*95.5 "*
4	जल प्रवाह (क्यूसेक)	
	i) मुख्य नहर	*10,000-700000*
	ii) वैशाली शाखा	*1,300*
	iii) मल्किपुर शाखा	*1180*
	iv) जैतपुर शाखा	*489*
5.	भौतिक रसायनिक अवस्था	
	i) तापक्रम ०से.	*17-32.5*
	ii) पी. एच.	*6.8-7.4*
	iii) नाइट्रेट (मि. ग्रा. 1 लीटर)	*0.14-0.45*
	iv) फॉस्फेट (मि. ग्रा. 1 लीटर)	*शून्य-0.09*
	v) सिलीकेट (मि. ग्रा. 1 लीटर)	*12-23*
	vi) क्षारियता (मि. ग्रा. 1 लीटर)	*90-160*
	vii) चालकता (माइक्रोमोहास से. मी.)	*260-310*
6.	जैविक अवस्था	
	i) प्लवक (संख्या/ ली.)	*110-680*
	ii) अधिपादप (संख्या/वर्ग से. मी.)	*1825-6123*
	iii) तलीय जन्तु (संख्या/वर्ग मीटर)	*250-900*
	iv) जलीय पौधे (कि./वर्ग मीटर)	*2.5-3.2*

6.2 गंडक नहर में जैविक अवस्था

बाल्मिकीनगर बाँध से गंडक नहर में वर्ष में दो बार पानी छोड़ा जाता है, जुलाई से अक्टूबर तथा जनवरी से मार्च के बीच । शेष के महीनों में गंडक नहर का जल लगभग ठहरा सा रहता है । मुख्य नहर में पानी का निम्नतम स्तर अप्रैल और जून के बीच पाया जाता है (0.8 से 1.0) मीटर

कुमार (1988) ने इस नहर कै जैविक अवस्था का अध्ययन किया है और इनके द्वारा संचयित आंकड़ों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस नहर में जैविक उत्पादकता की अच्छी क्षमता है । उन्होने पाया है कि प्लवक समुदाय की संख्या 65 से 680 प्रति लीटर के बीच है तथा प्लवक समुदाय की अधिकतम बाहुल्यता जून के महीने में पायी जाती है । ऐसा देखा गया है कि प्लवक समुदाय में सवसे अधिक योगदान हरित शैवाल का रहता है । नील हरित शैवाल तथा पीत हरित शैवाल क्रमश: दूसरे तथा तीसरे स्थान पर आते हैं । जन्तु प्लवक में सवसे अधिक संख्या रॉटीफर्स का होता है । प्रोटोजोवा तथा कोपीपोड की संख्या भी अच्छी पायी जाती है ।

जलीय जन्तुओं में घोंघे की संख्या सवसे अधिक पायी गयी है (250 से 900 प्रति वर्ग मीटर) । जलीय पौधों का जमाव भी विगत कुछ वर्षो से देखा जा रहा है । लेकिन इसका घनत्व अभी भी निम्न स्तर का है । जलीय पौधों में मुख्यत *हाइड्रिला वर्टिसीलाटा, नाजास फ्लेसिलीस, वेलिसनेरिया स्पाइरेलिस* आदि प्रमुख हैं । जलकुम्भी (*अ्रातक्कोर्निया क्रेसीपस*) भी कहीं कहीं देखने को मिलता है । शैवाल वर्गीय अपतृण *कारा* एवं *नाइटेला* की कई प्रजातियाँ सीमान्त क्षेत्रों तथा उपशाखाओं में पायी जाती हैं । नहर के किसी किसी भाग में किनारे पर नरकुलिय वर्ग के अपतृण (*इसकृपस इसकृपस*) भी कभी कभी दिख जाते हैं । गर्मी के मौसम में कहीं कहीं बड़े आकार के शैवाल या तो तटवंध से लगे हुए अथवा तैरते हुए देखने को मिलते हैं । एक दो स्थानों पर तो ये काफी मात्रा में पाए जाते हैं । ये शैवाल अधिकतर हरित वर्ग के हैं जैसे कि *क्लेडोफोरा, स्टीजियोक्लोनियम, किटोफोरा, हाइड्रोडिकटीयोन* आदि ।

6.3 गंडक नहर में मत्स्याखेट की स्थिति

मात्स्यिकी के श्रोत के रूप में इस नहर की पहचान अभी तक स्थापित नहीं हो पायी है । डेविड (1964) के अनुसार बाल्मीकिनगर में बाँध बनने के पश्चात् इस नहर में मछलियाँ बिल्कुल ही नहीं पायी जाती थी । लेकिन कालान्तर में इस नहर में अनेक प्रकार की मछलियाँ देखी गई हैं । अत: धीरे धीरे मत्स्य प्रजातिया् इस नहर में स्थापित हो रही है । आर्थिक दृष्टिकोण से यह एक शुभ संकेत है । सिंचाई विभाग, बिहार सरकार, के अधिकारियों से प्राप्त सूचना के अनुसार इस विभाग द्वारा नहर के कुछ भागों को मत्स्य परिग्रहण के लिए प्रति वर्ष नीलाम किया जाता है और इस तरह विभाग को प्रत्येक भाग से प्रति वर्ष 10 हजार से लेकर 25 हजार रूपये तक की आमदनी होती है । इस नहर से पकड़ी जाने वाली मछलियों में अधिकतर शिकारी वर्ग की होती हैं साथ ही छोटी प्रजाती की मछलियाँ भी बहुतायत में मिलती हैं । इस नहर से कितनी मछली पकड़ी और बेची जाती है इस के कोई ठोस आंकड़े उपलब्ध नहीं है । वैसे मत्स्यजीवी समुदाय द्वारा प्राप्त सूचना के अनुसार नहर के नीलाम किए जाने वाले भागों में 3000 किलोग्राम से 5000 किलोग्राम मछली प्रति वर्ष पकड़ी जाती हैं । नीलाम किए जाने वाले भागों की लम्बाई 1.0 किलामीटर से 3.0 किलामीटर की होती हैं ।

गंडक नहर तंत्र में मत्स्य परिग्रहण के लिए फांसों का प्रयोग अपेक्षाकृत ज्यादा होता है । गर्मी के दिनों में अप्रैल से जून के बीच फेंकवा तथा खिंचवा जालों का भी प्रयोग होता है । शिकारी वर्ग के मछलियों का प्रग्रहण मुख्यत छोपा विधि से ही किया जाता है । छोटी मछलियाँ तथा छोटे झिंगे अक्सर जाल अथवा कपड़े की मद्द से छान कर निकाल लिये जाते हैं ।

गंडक नहर मात्स्यिकी की वर्तमान स्थिति को देखने से ऐसा लगता है कि इस प्रक्रिया को अगर प्रबन्धन का वैज्ञानिक आधार प्रदान हो जाय ़तो ये नहर भी मात्स्यिकी, विशेषकर

परिग्रहण मात्स्यकी, के उपयोगी श्रोत बन सकते हैं । वर्ष के कुछ महीनों में विशेष प्रकार की मछलियों का अल्पकालिक पालन भी इनमें किया जा सकता है । पेन (घेरे) अथवा पिंजड़ा पद्धति से भी मत्स्य पालन की सम्भावनाएँ बन सकती है ।

7 उत्तर बिहार में मात्स्यिकी हेतु तालाब तथा पोखर

उत्तर बिहार की जलवायु तथा उपलब्ध संसाधन मछली उत्पादन के लिए अत्यन्त ही अनुकुल है । इस क्षेत्र में मत्स्य पालन के लिए पोखर तथा तालाबों की भरमार है और वास्तविकता में सदियों से यहाँ मत्स्य पालन होता आ रहा है । मत्स्य उत्पादन के परिपेक्ष्य में यह प्रदेश देश में दूसरा स्थान रखता है और इसमें पोखर तथा तालाबों से उत्पादित मछली एक विशेष भूमिका निभाती है । इस क्षेत्र के जनपदों में पश्चिमी चम्पारण तालाव तथा पोखर के संसाधन के मामले में अग्रणीय है जबकि सीवान में सबसे कम तालाब तथा पोखर हैं । प्रति हे. उत्पादन के दृष्टिकोण से मधुबनी तथा दरभंगा जनपदों के तालाब सबसे अधिक उपजाऊ हैं । विभिन्न जनपदों में मात्स्यिकी के लिए उपलब्ध पोखर तथा तालाबों का कुल क्षेत्रफल सारणी संख्या 10 में उद्यृत है ।

वर्तमान में उत्तर बिहार के इन तालाबों तथा पोखरों से औसतन 600 किलोग्राम मछली प्रति हे प्रति वर्ष के दर से पैदा होती है । वैसे मत्स्य पालक विकास एजेन्सी द्वारा प्रवन्धित पोखरों में अब 2000-2550 किलो प्रति हेक्टर प्रति पर्ष तक मछली उत्पादन होने लगा है ।

सारणी 10 उत्तर बिहार में पोखर तथा तालाब संसाधन

क्रमांक	जनपद	क्षेत्रफल (हे.)
1.	पश्चिम चम्पारण	4003
2	पूर्वी चम्पारण	9,153
3.	गोपालगंज	997
4.	सीवान	812
5.	सारन	948
6.	वैशाली	871
7.	मुजफ्फरपुर	1,822
8.	सीतामढ़ी	2,000
9.	मधुबनी	3,743
10.	दरभंगा	3,037
11.	समस्तीपुर	1,216
12.	वेगुसराय	1034
13.	सहरसा	1034
14.	पूर्णिया	3448
15.	कटिहार	4176
16.	खगड़िया	3163
17.	मधेपुरा	2176
कुल योग		**43,656 हेक्टर**

इस क्षेत्र के सर्वेक्षण के दौरान यह देखा और महसूस किया गया कि मत्स्य पालकों को समय पर उचित मात्रा तथा अच्छे किस्म के मत्स्य बीज नहीं मिल पाता हैं । ज्यादातर मत्स्य पालकों को पश्चिम बंगाल से आये मछली के बीज पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि प्राकृतिक

श्रोत नदियों से मत्स्य बीज उपलब्धता एक तो कम हो गयी है और हाल के वर्षों में अधिक जल क्षेत्र में मत्स्य पालन होने के फलस्वरूप मत्स्य बीज के माँग में आशातीत वृद्धि भी हुई है । आंकड़ों के आधार पर मत्स्य बीज उत्पादन में बिहार का देश में छठा स्थान है लेकिन उपलब्ध संसाधन तथा बढ़ती हुई माँग को देखते हुए यह कम है । उत्तर बिहार में मधुबनी के निकट मत्स्य बीज उत्पादन की एक सरकारी नर्सरी है लेकिन कुछ अपरिहार्य कारणों से इसके उत्पादन का स्तर काफी कम है ।

8. कोसी गंडक तल क्षेत्र में मत्स्य जाल एवं अन्य उपकरण

कोसी गंडक तल क्षेत्र में जलीय संसाधनों के विविधता के साथ साथ विभिन्न प्रकार के जाल तथा अन्य साजो सामान मत्स्याखेट के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं । जल विशेष का परितंत्र एवं मत्स्य प्रजातियों की उपलब्धता जाल तथा मत्स्याखेट के अन्य सामग्रियों के उपयोग प्रक्रिया को काफी हद तक प्रभावित करते हैं । उदाहरण के तौर पर अगर गंडक नदी एवं अन्य नदियों में प्रयुक्त किये जाने वाले जालों की समीक्षा की जाय तो यह देखने को मिलता है कि गंडक में अक्सर बड़े आकार के जाल मिलते हैं । कारण इस नदी की चौड़ाई तथा जल घनत्व अधिक है । बूढ़ी गंडक नदी में यद्यपि छोटे आकार के जाल का व्यवहार किया जाता है लेकिन इन जालों की विविधता गंडक से अधिक है । इसी प्रकार झील में प्रयुक्त जाल तथा पोखर में प्रयुक्त जाल में भिन्नता है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जल संसाधन और इसके पारितंत्र के अनुसार जाल के आकार-प्रकार में उल्लेखनीय भिन्नता है । लेकिन आज के इस तकनीकी विकास के युग में अभी भी पुरातन काल से चले आ रहे जाल एवं उपकरणों की बाहुल्यता है । इस अवस्था के लिए मुख्यतः दो कारण जिम्मेदार है । पहला मात्स्यिकी से संबंधित विभिन्न एजेन्सियों की उदासीनता एवं दूसरा, मत्स्य जीवी समुदाय की दीन-हीन आर्थिक स्थिति । अतः जालों तथा अन्य उपकरणों के नवीनीकरण की नितान्त आवश्यकता है ।

कोसी गंडक तल क्षेत्र में उन सभी प्रकार के जालों का प्रयोग किया जाता है जो गंगा जल तंत्र में किया जाता है । लेकिन, कहीं कहीं पारिस्थितिकी के अनुकूल थोड़े वहुत फेर वदल किये गए हैं । मुख्य रूप से इस क्षेत्र के जाल एवं टापों को निम्न रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

i) खींचा जाल (ड्रेगनेट अथवा शोरसीन)
ii) फांसा जाल (गिल नेट) अथवा फसला
iii) फेंका जाल (कास्टनेट)
iv) उठाजाल (स्कूपनेट)
v) थैला जाल (वेगनेट)
vi) टापाजाल (कुरेल)
vii) टापो (वास्केट ट्रेप्स)
viii) कँटिया डोरी (हूक एंड लाईन)
ix) भाले, अंकुशी, वर्छियां, स्पीयर्स, हारपून्स, हुक्स, आदि

उत्तर बिहार के झील चूंकि अपतृणों से भरे हुए हैं तथा इनमें शिकारी वर्ग की मछलियाँ पर्याप्त संख्या में पायी जाती हैं अतः टापा तथा टापों का प्रयोग बहुतायत में होता है । इस तल क्षेत्र की नदियों में सामान्यतः वहीं जाल प्रयुक्त किये जाते है जो गंगा तथा इसके सहायक नदियों में प्रचलित हैं ।

8.1 जालों का संक्षिप्त विवरण

8.1.1 खींचा जाल - खींचा जाल की कोई निर्धारित लम्बाई नहीं होती एवं जरूरत के अनुसार छोटे या बड़े जाल का चयन किया जाता है । यह जाल मुख्यतः ताल तलैयों में प्रयुक्त किया जाता है ।

8.1.1.1 उड़वारी जाल - ये छोटे फन्दों (1/6" से 1/2") के जाल होते है जो मोटे सूत से वनता है । इसकी लम्वाई 3 से 5 मीटर के वीच तथा 1 से 2 मीटर चौड़ी होती है । जाल के दोनों सिरों में लाठी की मोटाई के वरावर वाले वाँस वाँध दिये जाते है । यह जाल उथले जल, वर्षाती नाले या छोटे पोखरों में मत्स्य प्रग्रहण के लिए उत्तम है । इस जाल को दो व्यक्ति एक-एक सिरों को पकड़ कर खींचते है और उठाकर तट के ऊपर उलट देते है । इससे अक्सर छोटी प्रजातियों की मछलियों का शिकार होता है ।

8.1.1.2 चट्टी जाल - चट्टी जाल भी एक प्रकार का खींचा जाल है । इस जाल का प्रयोग अक्सर उन जलो में किया जाता है जहाँ अच्छे किस्म की मछली नहीं मिला करती हैं । मच्छरदानी के कपड़ों से बना यह जाल इन दिनों काफी प्रचलित हो रहा है । कारण विना ज्यादे परिश्रम के ही छोटी या वड़ी प्रजाति के किशोर मछलियों को इससे लगभग छान कर वाहर कर दिया जाता है । अदूरदर्शिता तथा शीघ्र लाभ उठाने के लालच ने इस जाल को जन्म दिया है जो दुर्भाग्य का विषय है । इन जालों के फंदे 1/4" से 1/8" के वीच होते है । इससे सभी प्रकार के मछलियों का प्रग्रहण किया जा सकता हैं और इस प्रक्रिया से अक्सर जल विशेष को मत्स्यविहीन बना दिया जाता है । इस तल क्षेत्र में इस जाल का प्रयोग हाल के वर्षों में वहुत अधिक वढ़ गया है । मत्स्यजीवी लोग इसका प्रयोग एक जल क्षेत्र में करने के पश्चात् दूसरे क्षेत्र में चले जाते हैं और इस प्रकार एक के वाद दूसरे और फिर तीसरे जल को मत्स्य के सन्दर्भ में वंजर बना देते हैं । इस जाल का प्रयोग अविलम्व वन्द होना चाहिए । अन्यथा हालत वद से वद्तर होने की सम्भावना है ।

8.1.1.3 महाजाल - महाजाल को पौढ़ीजाल अथवा वघजाल भी कहते है । इस जाल का इतिहास वहुत पुराना है । इस जाल में एक शिरोरज्जु (हेडरोप) तथा एक अघोर रज्जु (वॉटमरोप) होती हैं । जाल के कई टुकड़ों को आपस में जोड़ कर इसकी लम्बाई तथा चौड़ाई में वृद्धि की जाती है । इस जाल का प्रयोग बड़ी नदियों में होता है, जैसे कि गंडक, कोसी आदि । इसके संचालन के लिए कम से कम आठ मछुआरों की आवश्यकता होती है । साथ ही अपेक्षाकृत एक बड़ी नाव तथा डोंगी की भी जरूरत होती है । इस जाल का प्रयोग सामान्यतः बड़े आकार की मछलियों को पकड़ने के लिए होता है । वस्तुतः यह भी एक प्रकार का खींचा जाल है । इस जाल को फन्दे के आकार के आधार पर विभिन्न नामों की

संज्ञा दी जाती है । जैसे कि छोटे फन्दे वाले महाजाल को *घनैली* या *घन्नी* कहते है । मध्यम आकार के फन्दे वाले को *पौढ़ी* या *पन्डी* कहते है तथा बहुत बड़े फन्दे वाले महाजाल को *वघमाल* कहते है । महाजाल के विभिन्न प्रकार के जालों को सिर्फ नदी में ही प्रयुक्त किया जाता है, वर्षाकाल को छोड़कर । इस जाल के द्वारा वड़े से वहुत वड़े आकार के कार्प तथा शिकारी वर्ग के मछलियों का परिग्रहण किया जाता है ।

महाजाल का संचालन स्थिर जल में भी किया जाता है लेकिन इसके परिवर्तित रूप को । स्थिर जल में प्रयुक्त किये जाने वाले महाजाल के पूरे तल को थैले का आकार दे दिया जात है एवं शीशे अथवा लोहे के छोटे छोट गोले लगाये जाते है ताकि जाल का यह सिरा जल के तलछट तक चला जाय । इसके खींचने पर मछलियाँ थैले में फंस जाती है और फिर उनका निकलना मुश्किल हो जाता है । इस प्रकार के महाजाल को *सांठा* या *छाटा* भी कहा जाता है और इन्हें सामान्यतः ऐसे जल में प्रयुक्त किया जाता है जिसका तलछट लगभग समतल हो । इन जालों का फन्दा आम तौर पर 1/4" से 1/2" के बीच होता है और लम्वाई तथा चौड़ाई क्रमश 12 मीटर तथा 3 से 6 मीटर होती है ।

8.1.2 फसला या फाँसा जाल (गिलनेट) - खींचा जालों में अत्यधिक श्रम खर्च करना पड़ता है । अतः मानव ने कम श्रम में अधिक मत्स्य परिग्रहण हेतु फसला का अविष्कार किया । सिद्धान्त रूप से फसला जाल द्वारा अवाध जल में विचरण कर रहे मछलियों को पकड़ने की अद्‌भुत क्षमता होती है । इस जाल को पानी में एक दीवार की तरह खड़ा कर दिया जाता है और इस मार्ग से गुजरने वाली मछलियों का अग्र भाग आसानी से फन्दों में प्रवेश तो कर जाता है लेकिन वापस लौटने की प्रक्रम में इनके गलफरे वुरी तरह उलझ जाते हैं । किसी प्रकार अगर गलफरे भी मुक्त हो जाय तो मछलियों के उर्ध्वपंख (डोरसल फिन) का भाग जो अपेक्षाकृत अधिक मोटाई लिये होता है फंस जाता है और मछलियाँ वेवस हो जाती हैं ।

फसला जाल जिसे गलफड़े जाल (गिलनेट) भी कहते है को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है । (i) स्थिर जल में दीवार की तरह झूला दिये गये अथवा वाँध दिये गए जाल । इस तरह के जाल का प्रयोग पोखर, तालाव, मान, चौर आदि में किया जाता है ।

(ii) बहते जल, जैसे नदियों में जल की धारा में नाव से धीरे धीरे छोड़ा जाता है और ये जल बहाव के साथ बहते रहते है । ऐसे फसला जालों को *ड्रिप्ट गिलनेट* भी कहते हैं । इस तल क्षेत्र की नदियों में इसका अत्यधिक प्रयोग होता है ।

फसला जालों में जल के पारिस्थितिकी के अनुरूप हाल के वर्षो में काफी सुधार किये गए हैं । लेकिन इस क्षेत्र में आज भी सूत से बने पुरातन प्रकार के जाल जिन्हें *तियर* कहते हैं का प्रयोग हो रहा है । *फसला* अथवा *तियर* जाल भी कई प्रकार के देखने को मिलते हैं जिनका वर्गीकरण अंगुली के माप के आधार पर किया जाता है जैसे डेढ़ी (फंदे का माप डेढ़ अंगुल), *दोढ़ी* (फंदे का माप दो अंगुल), *तियानी, चौथी, पचौन्हा, छौघाँ, सतौंगी, अठौढ़ी* आदि । अंगुल मापी इन बड़े फन्दों के जाल को *सोरहौन* तथा *बिसौन* कहा जाता है । जिनका प्रयोग नदियों में होता है और बड़ी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं ।

एक अंगुल मापी छोटे फन्दे के तियर जाल को *सरैली* कहा जाता है एवं इसके द्वारा स्थिर जल में ढ़ालो *(नेनड्स नेनड्स)* सिंघी (*हेट्रोटयुनिस्ट्स फोसिलिस*), गरई (*चान्ना प्रजाती*), पुठिया (पुंटियस प्रजाती), टेंगरा (मिस्टस कवेसियस) आदि छोटी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं ।

छोटे फन्दे के फसला जालों को तैराने के लिए सरकन्डे (रीड) नामक पौधों की टहनिया लगायी जाती है जबकि बड़े फन्दों के जालों में लौकी, केले के कटे हुए तने, बाँस के छोटे टुकड़े अथवा खाली डिब्बे का प्रयोग किया जाता हैं ।

8.1.3 फेंका । घुमौवा । झिंगुरी ।भिरखा जाल ।कास्टनेट - इस तल क्षेत्र के पोखर, झील, चौर छोटी नदियों आदि में फेंका जाल का विशेष तौर पर प्रयोग होता है । इस जाल का आकार पिरामिड सदृष्य होता है और इसके तल में लोहे के छल्ले पिरो दिये जाते हैं ताकि जाल अच्छी तरह पानी में डूब कर तल तक पहुँच जाय । ऐसे जालों के फन्दे 1/4" से 1/2" के बीच होते हैं और यह सूत या नाइलॉन के बने होते है । इस प्रकार के जाल की लम्बाई तथा व्यास लगभग बराबर और 2 से 3 मीटर के बीच होता है ।

कभी कभी नदियों में मत्स्य प्रग्रहण के लिए बड़े फेंका जाल, जिनका व्यास 5-10 मीटर तक होता है, का भी प्रयोग होते देखा गया है । इसके तल में लगे लोहे के छल्ले काफी मोटे और वजनदार होते है । इस तरह के जाल को दो नावों की मदद से चलाया जाता है ओर एक विशाल परिधि के साथ यह जल में प्रवेश करता है । इस तरह के जाल से मोय (*बगेरियस बगेरियस*) जैसी-बड़ी मछलियों का शिकार किया जाता है । फसला जालों की तरह ही इनका भी वर्गीकरण फन्दे के आधार पर किया जाता है जैसे *जाली, जलिया दोगी, तेयान, चौंघी, आठवास* आदि । छोटे फन्दे वाले फेंका जाल से छोटी मछलियों का शिकार किया जाता है और अक्सर इसका संचालन उथले जल क्षेत्र में किया जाता है ।

8.1.4 उठौवा जाल- उठौवा जाल को *जाली, विसारी, विसार, मंगविसरा, खण्डसार* आदि के नाम से जाना जाता है इनका आकार त्रिभुजाकार होता है और इनका प्रयोग सामान्यतः निम्न आय वर्ग के मत्स्य जीवी लोग करते हैं । छोटे विसारी की लम्वाई 3 मीटर तक पायी गई है । किन्तु वड़े विसार, मंग विसार, खण्डसार आदि 8 से 10 मीटर लम्वे होते हैं । विसारी जाल का प्रयोग नहर, नाला, नदी, झील आदि के ऐसे क्षेत्र में किया जाता है जहाँ अपतृण जैसे वाधा न हो । विसारी जालों के फन्दे 1/10" से 1/6", विसार के 1/2" तथा खण्डसार जाल के फन्दे 1/2" से 7" तक पाये गए हैं । छोटी विसारी तथा वड़े विसार जालों को एक ही व्यक्ति चला सकता है लेकिन खण्डसार जालों के लिए दो व्यक्तियो की आवश्यकता होती है । खण्डसार जालों को मान, चौर एवं मन्द गति वाले नदियों में प्रयोग किया जाता है और कार्प मछली के साथ साथ बड़े वर्ग के शिकारी मछलियों को भी पकड़ा जाता है ।

8.1.5 हिलसौरी जाल (पर्सनेट) - हिलसौरी जाल का प्रयोग इस क्षेत्र में नहीं के वरावर है लेकिन ऐसी सूचना प्रकाश में आयी हैं कि गंडक, बूढ़ी गंडक आदि नदियों में हिल्सा के लिए इस जाल का कभी-कभी प्रयोग होता है। यह जाल वंगाल में प्रयुक्त शांगला और खडकी तथा पूर्वी उत्तरप्रदेश के कमेल की तरह ही है।

कमेल की तरह ही मजवूत धागों से वने जालों का प्रचलन भी प्रकाश में आया है जिन्हें *गटेल* कहते हैं और इनसे कॉमन कार्प तथा अन्य मछलियों का शिकार किया जाता है।

8.1.6 थैलाजाल (बैगनेट) - थैला जाल को *ढ़ावा, खडेल वोर* आदि के नाम से भी जाना जाता है । यह एक खोखली पूँछ वाला जाल है जिसका ऊपरी सिरा चौड़ा होता है । ढ़ावा छोटे आकार का तथा खडेल बड़े आकार का होता है । इससे उथले जल में शिकार किया जाता हैं । इसका संरचना 1/8" से 1/2" तक के फन्दे वाले जालों से किया जाता है । इस जाल मे सभी प्रजाति के मछलियों का शिकार होता है ।

वोर जाल की लम्वाई 10 मीटर से 25 मीटर तथा चौड़ाई 2 से 5 मीटर तक होती है । इनका प्रयोग प्रायः वरसात के मौसम में धीमी गति से प्रवाहित नदियों में किया जाता है । वरसात में जव नालों के द्वारा नदियों का जल चौर में चढ़ने लगता है तो इस जाल का अक्सर प्रयोग करते देखा गया है ।

8.1.7 टाप या ट्रैप - उत्तर बिहार के जल संसाधनों में मत्स्य प्रग्रहण के लिए टाप या ट्रैप का अत्यधिक महत्व है । जलीय पौधों की अधिकता वाले जलों, जैसे कि मान, चौर आदि में इनका विशेष तौर पर प्रयोग होता है । इस तल क्षेत्र में तीन प्रकार के टाप प्रयोग होते हैं ।

- क) मिश्रित जाल वाले टापें जैसे कि कुरैल ।
- ख) टोकरी अथवा संदूक वर्गी बंद टाप ।
- ग) पटिया नुमा खुला टाप जिसे सुविधानुसार मोड़कर किसी जल क्षेत्र को घेरा जा सकता है।

8.1.7.1 कुरैल

कुरैल को कहीं-कहीं कुडियार भी कहते हैं । कुरैल में एक 2 से 3 मीटर व्यास का गोलाकार जाल मतबूत धागों से वनाया जाता है जिसका फंदा 1/2" से 1" तक होता है । इस जाल को बाँस से वने 6 डंडों द्वारा नीचे की ओर बाँध दिया जाता है । जाल के बीच में एक रस्सी बंधी होती है जो खींचने पर खुल जाती है । वाँस के डंडो को इस तरह वांधा जाता है कि यह एक पिरामिड का आकार ले लेता है । मान तथा चौर में कुरैल को जहाँ-तहाँ मजवूती

के साथ रखा जाता है और इनके अंदर के जाल को खोल दिया जाता है ताकि उस क्षेत्र विशेष की मछलियाँ इस जाल में फंस जाय तथा जिन्हे पानी के अंदर ही लपेट लिया जाता है और वाहर निकाल लिया जाता है । इस प्रकार के मत्स्य प्रग्रहण में सभी प्रकार की वड़ी मछलियों का शिकार हो सकता है ।

8.1.7.2 संदूकनुमा टाप

कोसी गंडक तल क्षेत्र में इस तरह की अनेक टापें प्रचलित हैं जैसे: (i) अरसी (ii) विरती (iii) घना (iv) गोई तथा (v) दोढ़ौली । इनका आकार संदूकनुमा होता है और यह वाँस के खपच्चियों से वने होते हैं ।

(i) *अरसी*

अरसी की आकृति संदूकनुमा होती है और इसका आकार वर्गाकार अथवा आयताकार हो सकता है। इनकी संरचना वाँस के पतले-पतले खपच्चियों से की जाती है । खपच्चियों को सूत अथवा धागों से आपस में बुना जाता है । दो खपच्चियों के वीच की दूरी के आधार पर इन्हें *एकाढ़ी* (घने बुने हुए अरसी) अथवा *दोआढ़ी* (दो खपच्चियों के वीच की दूरी लगभग 1 से. मी.) कहा जाता है। अरसी के द्वार पर एक पाटा लगा होता जो अंदर की ओर खुलता है और यह सुनिश्चित करता है कि छोटी मछलियाँ या झींगे का प्रवेश तो हो सकता पर ये पुनः निकल नहीं सकते ।

अरसी सामान्यत: 0.5 से 1.0 मीटर लम्बा तथा 0.25 से 0.50 मीटर चौड़ा होता है ।

(ii) *विरती*

विरती की संरचना भी अरसी की तरह ही होती है, लेकिन यह आकार में लम्वोतरा होता है । प्रवेश द्वार में पाट के वदले तीरछी खपच्चियाँ लगी होती है जिससे मछलियाँ

सुगमता से अन्दर चली जाये । इसमें लगे बाँस की खपच्चियों को कुश के घास से बुना जाता है । यह गईची, झींगा, गरई आदि मछलियों के शिकार के लिए उत्तम है ।

(iii) *घाना*

इस तल क्षेत्र के मान तथा चौर में झींगा, गईची, मलगा, (*मेक्रोगेंथस*) मछलियों के प्रग्रहण के लिए इसे प्रयोग में लाया जाता है । यह बिरती की तरह ही लम्बोतरा होता है और जूट के धागों से बुना हुआ होता है । घना की अगर लम्बाई अधिक हो तो उसे *दोगैली* कहते हैं ।

(iv) *गोई*

गोई घाना का ही एक प्रकार है जिसमें दो खपच्चियों के बीच की दूरी घाना से अधिक होती है । स्थानीय तौर पर उपलब्ध एक जंगली घास से इसकी बुनावट की जाती है जो पानी में देर से सड़ती है । गोई का आकार घाना से बड़ा होता है । इससे अक्सर छोटी मछलियों के साथ किशोर वर्ग की मछलियाँ पकड़ी जाती है ।

8.1.x.3 बारी

मान के ऐसे क्षेत्र जहाँ की गहराई अपेक्षाकृत अधिक होती है वहाँ बारी के प्रयोग से मत्स्याखेट किया जाता है । बारी मत्स्य प्रग्रहण प्रक्रिया में मान के स्थल विशेष को बाँस के खपच्चियों से बने चिलवन से घेर दिया जाता है । चिलवन को इस तरह खड़ा किया जाता है कि जल का वह भाग श्रृंखलाबद्ध तरीके से कई भाग में विभाजित हो जाय और इस तरह मछलियाँ एक तरह से पिंजरित हो जाती हैं । इस अवरूद्ध जल क्षेत्र में खींचा जाल के मद्द से या बिरती, अरसी, आदि के प्रयोग से मछलियाँ पकड़ी जाती हैं । चिलवन से घिरे अन्दरूनी भाग में जलीय पौधों को ढेर के रूप में भी लगा दिया जाता है और इस ढेर के इर्द-गिर्द सन्दूकनुमा टाप बैठा दिये जाते हैं और इसमें फंसे मछलियों को पकड़ लिया जाता है ।

कहीं-कहीं बारी को सूप का आकार देकर भी मत्स्य प्रग्रहण किया जाता है, विशेषकर ऐसे ताल-तलैयों में जहाँ से जल की निकास नदी की ओर होता है । जल की धारा के साथ निकली मछलियाँ इस चिलवन में फंस जाती है जिन्हे थोड़े-थोड़े अन्तराल के पश्चात इकट्ठा कर लिया जाता है ।

8.1.9 कँटिया-डोरी (हुक एण्ड लाईन)

एक मजबूत धागे में थोड़े-थोड़े अन्तराल पर कँटिया बाँध दी जाती है और इस लम्बे धागे, जिसमें अनेक कँटिया बँधी होती है, को जल क्षेत्र के तटीय भाग में लगा दिया जाता है । मछलियों को आकर्षित करने के लिए काँटों में छोटी मछलियों या झींगे के आहार लगा दिये जाते है । शिकारी वर्ग की मछलियाँ इन आहारों को खाने के प्रयास में कँटियों में फंस जाती हैं और इस प्रकार इन्हें पकड़ लिया जाता है । बरसात के मौसम में इस प्रकार की मत्स्य प्रग्रहण आम देखने को मिलता है, विशेषकर नदियों में ।

8.2 मत्स्य परिग्रहण में प्रयुक्त औजार

इस क्षेत्र में मत्स्य परिग्रहण के लिए अनेक प्रकार के औजार प्रयुक्त किये जाते हैं। बर्छियाँ, भाले, अंकुशिया जैसे धारदार औजारों का प्रयोग आम हैं । ये औजार सामान्यत बाँस के छोटे अथवा बड़े डंडों से बंधे हुए होते हैं । उत्तर विहार के जलों में निम्न प्रकार के औजार प्रयुक्त होते हैं ।

8.2.1 झाबा

मध्यम मोटाई वाले बाँस के एक सिरे में लोहे की पत्ती से 8 से 16 की संख्या में धारदार लोहे की तीलियों को बाँध कर झाबा का निर्माण किया जाता है । इसके द्वारा समान्यतः रात में रोशनी की मदद से मछलियों का शिकार किया जाता है । प्रकाशपुंज से आकर्षित होकर अनेक प्रकार की मछलियाँ जल के सतह पर आ जाती हैं जिन्हें इस झाबा के प्रहार से घायल कर पकड़ लिया जाता है ।

8.2.2 *शहत*

शहत झाबा का ही वृहत रूप है । इसमें लोहे की तीलियों के स्थान पर लोहे की ही मजबूत बर्छियाँ बांस के एक सिरे में जड़ दी जाती है । ये बर्छियाँ अत्यन्त ही नुकीली तथा धारदार होती हैं । बांस की लम्बाई जल के गहराई के अनुसार घटाई-बढ़ाई जाती है । शहत का बाह्य रूप झाड़नुमा होता है । इसका प्रयोग आम तौर पर बड़ी मछलियों के शिकार में किया जाता है । बोवारी, चीतल, टेंगरा आदि के शिकार लिए इसे काफी उपयुक्त माना जाता है । जलीय पौधों में छिपे मछलियों पर शहत द्वारा अकस्मात प्रहार कर उनका शिकार कर लिया जाता है ।

8.2.3 *कांडा*

कांडा एक प्रकार का भाला है जो ठोस तथा मजबूत होता है । इसका फल विशेष धारदार होता है और मध्यम आकार तथा मोटाई वाले बाँस के एक सिरे में जड़ा हुआ होता है । सामान्यतः इसका प्रयोग कुरैल के साथ करते देखा गया है। कुरैल में फंसे मछली को इसके द्वारा भेद कर घायल कर दिया जाता है और फिर पकड़ लिया जाता है । कांडा का प्रयोग कछुओं के शिकार में भी किया जाता है ।

8.3 *मत्स्य प्रग्रहण के अन्य साधन*

मत्स्य प्रग्रहण में उपरोक्त वर्णित जाल, टाप एवं औजारों के अतिरिक्त अन्य साधनों की भी आवश्यकता होती है जैसे नाव, वेडा आदि । आवश्यकता अनुसार निम्न प्रकार के साधन इस तल क्षेत्र में प्रयोग होते हैं ।

8.3.1 *बेडा पेरा*

इस क्षेत्र में केले के पौधे वहुतायत में पाये जाते हैं । अतः इनके तनों का उपयोग वेडा वनाने में किया जाता है । कई तनों को आपस में जोड़कर मत्स्य प्रग्रहण के लिए एक प्लेटफार्म तैयार कर लिया जाता है जिसके उपर चढ़कर जाल आदि का संचालन किया जाता है । वेडे में अक्सर एक आदमी ही रह सकता है । वेडे का प्रयोग स्थिर जल में ही होता है क्योंकि नदियों की धारा में यह उपयुक्त नहीं होता ।

8.3.2 *मोटर वाहनों के ट्यूब का बेडा*

इस क्षेत्र में मोटरवाहनों के ट्यूब का काफी प्रचलन है । शिकारी इसमें हवा भरकर जल में छोड़ देते है और इस पर बैठ कर शिकार करते हैं ।

8.3.3 *छोटी नौकाएं*

मान तथा चौर में ज्यादातर छोटी नौकाओं के माध्यम से शिकार होते देखा जा सकता है। ये 2 से 3 आदमियों का भार वहन करने में सक्षम होते हैं । इनकी सहायता से छोटे आकार के खींचा जाल, फसला, घुमौआ जाल, बिसारी आदि को चलाया जाता है । इसकी लम्वाई आम तौर पर 4 से 5 मीटर तथा चौड़ाई 1 से 1.5 मीटर होती है । यह लकड़ी के पट्टों से वनता है और लगभग 1500 रूपये की लागत आती है ।

8.3.4 *बड़ी नौकाएँ*

वड़ी नौकाओं को कतरा, डोंगा, नाव आदि के नाम से जाना जाता है । इनकी लम्वाई 5 से 10 मीटर तथा चौड़ाई 2 से 4 मीटर होती है । इन नावों की सहायता से महाजाल, वड़े खींचा जाल आदि का संचालन किया जाता है । ये नाव वहते तथा स्थिर दोनों प्रकार के जल के लिए उपयुक्त है । ये नाव पुरातन काल से ही चले आ रहे हैं और इनमें किसी भी प्रकार का नवीनीकरण देखने को नहीं मिलता है ।

इन नावों को बनाने में 4000 से 5000 रूपये की लागत आती है। अतः आम मछुए के पास इस प्रकार नाव प्रायः नहीं होता हैं । सहकारी समिति अथवा आर्थिक दृष्टिकोण से सुदृढ़ मछुए ही इनको रखने में सक्षम हो पाते हैं ।

9. बाढ़ बहुल आर्द्रक्षेत्रिय झील परितंत्र में ऊर्जा का स्थानांतरण

जल तंत्र में वास करने वाले समस्त प्राणी, वनस्पति वर्ग के हों अथवा जन्तु वर्ग के, बढ़ोतरी या उत्तरजीविता के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। खाते हैं या खाये जाते हैं की प्रक्रिया चलती रहती है और फलस्वरूप हमें उत्पादन प्राप्त होता है। खाद्य-श्रृंखला एक सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा ऊर्जा का स्थानांतरण, एक स्तर से दूसरे स्तर तक होता है। ऊर्जा स्थानांतरण को संचालित करने वाली खाद्य श्रृंखला की एक भी कड़ी अगर विकृत हो जाय तो समस्त उत्पादन प्रक्रिया पर इसका असर पड़ता है। मानव कल्याण के लिए उत्पादन प्राप्त करने हेतु जलीय संसाधनों का समुचित प्रबंधन आवश्यक है और उचित प्रबंधन प्रणाली के विकास के लिए जल विशेष की पोषी गतिकी को समझना अनिवार्य है। मान तथा चौर में मात्स्यकी को स्थिरता प्रदान करने तथा लाभकारी बनाने के लिए मत्स्य प्रजातियों का सही चयन एवं ताल-मेल, जो उपस्थित खाद्य-श्रृंखला के अनुरूप हो, की नितांत आवश्यकता होती है और इसका निर्धारण पोषी गतिकी के स्तर पर निर्भर करता है।

जलीय खाद्य-श्रृंखला पर दृष्टिपात करने पर मिलता है कि आमतौर पर ऊर्जा स्थांतरण के दो प्रमुख मार्ग हैं :-

- सामान्य खाद्य श्रृंखला, जो प्लवक से शुरू हो कर मछली में समाप्त होती है।

एवं

- वनस्पति के मृत्यु से उपजे अपरद से शुरू हो कर मछली में समाप्त होने वाली श्रृंखला।

पारिस्थितिकी के नियमानुसार एक चरण से दूसरे चरण में 10 प्रतिशत की ऊर्जा ही स्थांतरित हो पाती है एवं बाकी की 90 प्रतिशत वातावरण में किसी न किसी रूप में लुप्त हो जाती है, जैसे कि जलीय परितंत्र में अपरद के रूप में तलछट पर भंडारित हो जाती है । प्रारंभिक उत्पादकों की संख्या सबसे बड़ी होती है और जैविक उत्पादन के इस स्तर में वनस्पति वर्ग के जीवों का वर्चस्व होता है, अतः जलीय तलछट में जमा होते अपरद मुख्यतः वनस्पति मूल के होते हैं। बाढ़-बहुल तल क्षेत्र के जलाशयों में अपतृणों के अत्यधिक जमाव से अपरद रुपी उर्जा के भंडारण में निरंतर वृद्धि होती रहती है। मान एवं चौर में प्रारंभिक उर्जा की अवस्था को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि चूँकि अपरदन उर्जा एक सशक्त स्त्रोत है, अतः इन जलतंत्रों की मात्स्यिकी उत्पादकता के संदर्भ में इस स्त्रोत पर विशेष रूप से आधारित है।

उत्तर बिहार के मानों में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि इस क्षेत्र के उन्मुक्त जल संसाधन अपरदन के मामले में अत्यधिक धनी हैं लेकिन ऊर्जा के इस असीम भंडार का सही तौर पर मत्स्य उत्पादन में स्थांतरण नहीं हो पा रहा है । अतः ऊर्जा का एक बड़ा हिस्सा नष्ट हो जाता है। ऐसा देखने को मिला है कि इन जल संसाधनों में अपरद भोजी मत्स्य प्राजातियों जैसे कि नैन (*सिरहीनस मिरगाला*), की कमी है और जो हैं, उनकी बढ़ोतरी अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। इस तल क्षेत्र के जलाशयों में अपरद की स्थिति पर विवेचना करने पर जो बात उभरती है वह है: तलछट में अवस्थित वनस्पति वर्ग के मृत वस्तुओं के पूर्ण विघटन में कमी और परिणामस्वरूप अपरद भोजी मत्स्य प्रजातियों के लिये सही अवस्था के भोजन में व्यवधान। उदाहरण के तौर पर मुक्तापुर मान, समस्तीपुर में अपरद की औसतन स्तर 14.3×10^5 किलो कैलोरी प्रति हेक्टर प्रतिवर्ष पायी गयी है लेकिन उत्पादित मछली में इस वृहत ऊर्जा का समुचित परिलक्षण आशानुकूल नही था। इस मान से उत्पादित मत्स्य ऊर्जा के विवेचना करने पर पाया गया है कि 206800 किलो कैलोरी प्रति हेक्टर प्रतिवर्ष प्राप्त होता है, जिसमें छोटी प्रजातियों की मछलियों का योगदान 1,10,112 किलो कैलोरी (53.25%) है। शेष भाग में क्रमशः पल्वक भोजी (13.12%), शिकारी वर्ग के (24.84%) एवं अपरद भोजी (8.79%) है। स्पष्टतया मान तथा चौर के मत्स्य उत्पादन में गति प्रदान करने के लिए आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ अपरद भोजी मछलियों के उत्पादन को बढ़ाना होगा और इस तरह अपरद खाद्य श्रृंखला को अधिक से अधिक कारगर बनाना होगा। इस तल क्षेत्र के प्राकृतिक जल संसाधनों

के अध्ययन के दौरान यह भी देखने को मिला है कि आंशिक अथवा पूर्ण रूप से प्रबंधित मानों में ऊर्जा का प्रारंभिक उत्पादन तथा स्थांतरण तुलनात्मक दृष्टिकोण से बेहतर है। पुनः मानव अतिक्रमण से ग्रसित जल संसाधनों में इन प्रक्रियाओं पर विपरीत असर पड़ते भी देखा गया है। अतिक्रमण रहित मान में प्रकाश संश्लेषी कार्य कुशलता (फोटोसेन्थेटिक एफीसेंसी) तुलनात्मक दृष्टिकोण से अधिक पायी जाती है (मुक्तापुर मान, 4.86%), जबकि कॉटीमान, मुजफ्फरपुर, जिसमें ताप विद्युत संयत्र की छाई आती में यह 3.26% है । सारणी संख्या 11 में इस तल क्षेत्र के कुछ मानों में ऊर्जा स्थांतरण की अवस्था को दर्शाया गया है ।

सारणी 11 मान में ऊर्जा स्थांतरण

मान	अवस्था	प्रारम्भिक उत्पादन से मछली	सूर्य ऊर्जा से मछली
मुक्तापुर	अतिक्रमण रहित, आंशिक प्रबन्धन	0.1622-0.2408	0.00335-0.01037
कॉटी	अतिक्रमित, प्रबन्धन नहीं	0.1209-0.1873	0.00241-0.009653
मनीका	अतिक्रमित, आंशिक प्रबन्धन	0.1831-0.3015	0.00463-0.018431
मोतीझील	अतिक्रमित, आंशिक प्रबन्धन	0.1462-0.2517	0.00251-0.010324
टारकुलिया	अतिक्रमण सहित प्रबन्धित	0.1843-0.3047	0.00546-0.01776

संस्तुति

पूर्व के अध्यायों में वर्णित आंकड़े, जो वर्तमान अवस्था को दर्शाते हैं, के विवेचना से यह स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि उत्तर बिहार मत्स्य संसाधन और उत्पादन क्षमता के दृष्टिकोण से अग्रणीय स्थान रखता है। मात्स्यकी श्रोत की जितनी विविधता इस भू भाग में है वह अपने आप में एक उदाहरण है । जलीय जैव-विविधता एवं मत्स्य उत्पादन का यह क्षेत्र उल्लेखनीय तो है पर उपेक्षित है । यहाँ के मान तथा चौर सदियों से मात्स्यिकी के उत्तम श्रोत रहे हैं तथा इस क्षेत्र की सभ्यता, संस्कृति एवं आर्थिकी में अपूर्व योगदान देते हैं । पारिस्थितिकी के मानदण्ड के अनुसार ये जल संसाधन ऊपजाऊ होने के साथ साथ क्षेत्र के पर्यावरण संतुलन में भी विशेष भूमिका निभाते है । जैविक उत्पादकता में श्रेष्ठ ये जल संसाधन उच्च्य स्तर के मत्स्य उत्पादन की क्षमता रखते हैं । लेकिन निरंतर उपेक्षा तथा वढ़ती हुई मानव अतिक्रमण के पृष्ठभूमि में वर्तमान उत्पादन प्रक्रिया में एक बिखराव सा आ गया है। प्रकृति प्रदत ये सुन्दर जल संसाधन तेजी के साथ दल दल में परिवर्तित हो रहे हैं और इस प्रक्रिया को निरंतर वढ़ते जलीय पौधे के जमाव ने और भी जटिल बना दिया है। वस्तुस्थिति के इस परिपेक्ष में आज आवश्यकता है एक ठोस नीति तथा सुदृढ़ वैज्ञानिक प्रबंधन प्रणाली की ताकि इन जल संसाधनों का संरक्षण करते हुए सार्थक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। किसी भी संसाधन की सार्थकता तभी होती है जब इससे मानव हित में समुचित उत्पादन प्राप्त हो । इसके लिए पारिस्थितिकी, जैवविविधता तथा मात्स्यिकी विकास के बीच सही तालमेल का होना अति आवश्यक है क्योंकि जल तंत्र के प्रत्येक आयाम का विकास ही सही विकास है।

इस तल क्षेत्र के जल संसाधन अत्यधिक दोहन के शिकार हैं एवं अज्ञानवश मानव द्वारा इनका अतिक्रमण भी किया जाता रहा है । अतः इन संसाधनों का कार्य विशेष के अनुरूप पुनः वर्गीकरण करने की आवश्यकता है ताकि उचित वैज्ञानिक प्रवन्धन प्रणाली को लागू कर संरक्षण और उत्पादन में सामंजस्य स्थापित किया जा सके । इन जल संसाधनों को दूषित करने वाले कारणों की समीक्षा होनी चाहिए ताकि इन पर रोक थाम हो सके एवं स्थायी उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। स्थानीय लोंगों के बीच विभिन्न जलों की

उपयोगिता के वारे में चेतना एवं जागृति लाने की आवश्यकता है ताकि आर्थिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं की जानकारी के साथ साथ इनके संरक्षण से होनेवाले दीर्घकालिक लाभ पर प्रकाश पड़ सके। इसके अतिरिक्त यह आवश्यक है कि सभी प्रकार के उपलब्ध मात्स्यकी के श्रोतों का वैज्ञानिक पद्धति से उपयोग किया जाए ताकि उत्तर बिहार में मछली के अभाव की पूर्ति हो सके तथा मत्स्य जीवी समुदाय की आय में वृद्धि हो सके।

संदर्भ

1. चौधरी आर. के. 1976. *ए सर्वे ऑफ मिथिला लिटरेचर*
   अम्विका प्रकाशन, पटना

2. झिंगरन, वी. जी. 1975. *फिस एन्ड फीसरीज ऑफ इंडिया* ,
   हिन्दुस्तान पाब्लीकेशन, दिल्ली

3. रॉबर्ट, ए. जे. 1984. फोरवर्ड, प्रोसीडिंग ऑफ दी इन्टरनेशनल वेटलैन्ड वेल्युज यु. एस. फीस एन्ड वायल्ड लाईफ सर्विस, वाशींगटन, डी. सी.

4. साथेर, एच. जे. 1984. सॉमरी, आई. डब्लु. वी. ए. वर्कशॉप, यु. एस. फीस एन्ड वाईल्ड लाईफ वाशींगटन, डी. सी.

****